'नवयुवक'

प्रस्तावना

'जैन शास्त्रों की असंगत बातें' नाम की यह पुस्तक मेरे लेखों का संग्रह है। 'तरुण जैन' नामक मासिक पत्र जो कलकत्ते से श्री विजयसिंह जी नाहर तथा श्री भँवरमलजी सिंघी के सम्पादकत्व में प्रकाशित होता था उसमें सन् १९४१ की मई से सन् १९४२ के सितम्बर तक प्रतिमास लगातार ये लेख 'शास्त्रों की बातें' शीर्षक से प्रकाशित होते रहे। इसके पश्चात् 'तरुण जैन' का प्रकाशन स्थगित हो जाने के कारण मेरे लेख भी स्थगित रहे। फिर सन् १९४४ में तेरापंथी युवक संघ लाडनूँ द्वारा बुलेटिन प्रकाशित होने लगे तब संघ के अनुरोध पर इन बुलेटिनों में 'शास्त्रों की बातें' शीर्षक लेख मैंने पुनः देने प्रारम्भ करदिये। 'तरुण जैन' में तीन चार लेख प्रकाशित होते ही सम्पादक महोदय के पास कुछ सज्जनों के पत्र आये जिन्होंने लिखा कि लेखक जैन-शास्त्रों पर आक्रमण कर रहा है इसलिये तरुण जैन में इस प्रकार की लेख माला को स्थान नहीं दिया जाना चाहिये। इस के उत्तर में टिप्पणी देते हुए सम्पादक महोदय ने सितम्बर सन् १९४१ के 'तरुण' के अंक में मेरे उद्देश्य को संक्षेप में प्रकट

किया। वह टिप्पणी यथास्थान इस पुस्तक में प्रकाशित कर दी गई है। इधर अनेक सज्जनों ने मुझसे मेरे उद्देश्य को बतलाने के लिये विशप आग्रह किया तब मैने जनवरी सन् १६४२ के लेखमें मेरे उद्देश्य को प्रकाशित करते हुए बतलाया कि जैन शास्त्र ही एक ऐसे शास्त्र हैं जिनसे कोई कोई यह भाव भी प्रमाणित करते हैं कि भूख प्यास से मरते हुवे को अन्नपानी की सहायता से बचाना, गरीब दुःखी, विपत्तिग्रस्त को सहायता करना अस्वस्थ माता पिता, पति आदि की सेवा सुश्रुषा करना, रोगियों की चिकित्सा के लिये चिकित्सालय खोलना, शिक्षा प्रचार के लिये शिक्षालयों का प्रबन्ध करना आदि संसार के ऐसे सब प्रकारके परोपकारी कामों को एक सद्गृहस्थ द्वारा निस्स्वार्थ भावसे किये जानेपर भी उस गृहस्थ को एकान्त पाप होता है। इन भावों के प्रचार का असर आज जैन कहलाने वाले हजारों व्यक्तियों के हृदय पर हो चुका है। शास्त्रों को सर्वज्ञ प्रणीत एवम् भगवान के वचन मानकर उनके वचनों को अक्षर अक्षर सत्य माना जा रहा है और उनके विधि-निषेधों को आंख मूंदकर अमलमें लाना कल्याणकारी समझा जाता है।

मानव समाज परस्पर सहयोग के बिना चल नहीं सकता। जीवनमें पग पगपर अन्यके सहयोग की आवश्यक्ता होती है। समाजकी रचना और व्यवस्था ही इस लिये हुई है कि परस्पर के सहयोग द्वारा नानातरह की सुख-सुविधाएँ प्राप्त करके सामुहिक एवम् व्यक्तिगत जीवन को अधिकसे अधिक सुखी बनाया

जा सके। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिस सहयोग में किसी प्रकारका अपना ऐहिक स्वार्थ होता है उसे तो प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी प्रेरणा के भी आदान प्रदान करनेकी चेष्टा करता है; परन्तु जिसमें अपना ऐहिक स्वार्थ कुछ भी नहीं होता उसके लिये पुण्य और धर्म जैसे गुप्त लाभ के आकर्षण की प्रेरणा के बिना—भला कोई कुछ किस लिये करेगा? यानी कतई नहीं करेगा। इसलिये भूख प्यास से मरने वाले को अन्नपानी की सहायता से बचाने, विपत्तिग्रस्त की सहायता करने, रोगियों की चिकित्सा के लिये चिकित्सालयों का प्रबन्ध करने आदि संसार के ऐसे कामों में यदि अपना कोई ऐहिक स्वार्थ नहीं होता हो अथवा कोई सांसारिक मतलब नहीं सधता हो तो किस लाभ और आकर्षण के लिये एक गृहस्थ व्यर्थ ही इस प्रकारके कामों में प्रवृत्ति करके पापों का उपार्जन करेगा और उन पापों के फल स्वरूप अनन्त दुःख भोगेगा। कोई भूख प्यास से मरता है तो भलेंई मरे और कोई विपत्ति भोग रहा है तो भलेंई भोगे। उसे क्या पड़ी है कि वह उसमें दस्तन्दाजी करके पाप उपजावे और फलस्वरूप अपने आपको व्यर्थ ही दुःखी बनावे। इस समय जैन कहलाने वालों की करीब १४ लाख की संख्या है जिसमें करीब ४-५ लाख तो दिगम्बर जैन कहलाते है जो इन शास्त्रों (आगम सूत्रों)को नही मानते; परन्तु बाकी शेष श्वेताम्बर कहलाने वाले समस्त जैन इन आगम-सूत्रों को मानते हैं जिनके किन्हीं पाठों से ऊपर कहे हुए

(संसार के सार्वजनिक लाभ के कामों को निस्स्वार्थ भाव से करने पर भी गृहस्थ को एकान्त पाप लगे—ऐसे भाव पुष्ट होने की कचित सम्भावना है। यद्यपि आगम सूत्रों को मानने वालों में भी सभी इस प्रकार एकान्त पाप होना नहीं मानते; परन्तु एकान्त पाप मानने वालों की संख्या भी इस समय कई हजारों तक पहुंच चुकी है।

मुझे ऐसा लगा कि इस प्रकार के भावों का प्रचार न केवल मानव समाज के हितों के लिये ही घातक हैं अपितु संसार के इतर प्राणियों के लिये भी अत्यन्त हानि कारक है। इस लिये मनुष्यत्व के नाते ऐसे शास्त्रों को अक्षर अक्षर सत्य मानने की अन्ध-श्रद्धा को भंग करना नितान्त आवश्यक है। और इसके लिये एक ही उपाय है कि शास्त्रों में आये हुए प्रत्यक्षमें असत्य प्रमाणित होनेवाले विषयों को सर्व साधारण के समक्ष रखा जाय, ताकि जन-साधारण का मस्तिष्क अन्ध-श्रद्धा को तिलांजलि देकर बुद्धिवाद को ग्रहण करने में समर्थ हो सके। मेरा यह विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक में जितनी सामग्री दी जा चुकी है यदि न्याय और बुद्धि पूर्वक उनपर विचार किया जाय तो शास्त्रों को अक्षर अक्षर सत्य मानने की अन्ध श्रद्धा को मस्तिष्क से हटा देने के लिये पर्याप्त है। यद्यपि इस में आई हुई सामग्री शास्त्रों में पाये जाने वाले असत्य, असम्भव और अस्वाभाविक तथा पूर्वा पर सर्वथा विरुद्ध विषयों की तुलना में कुछ नहीं के बराबर है तथापि जहाँ एक अक्षर भी अन्यथा

मानने मे अनन्त संसार परिभ्रमण का भय दिखाया गया है वहाँ यह सामान्य सामग्री भी आशा है, उनका उक्त भय-भञ्जन के लिये अवश्य पर्याप्त होगी।

इस लेख संग्रह को पढ़ने पर, आँखें मूंदकर शास्त्र नामक पोथियों के प्रत्येक शब्दको 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' मानने वाले और उनके आधार से संसार के परोपकारी कामों के करने मे एकान्त पाप जानने वाले पाठकों के हृदय में यदि कुछ भी परिवर्त्तन हुआ तो मैं अपने इस तुच्छ प्रयास को सफल समझूंगा।

अन्तमे, मैं उन सज्जनों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मेरे लेखों को पढ़कर मुझे प्रोत्साहित किया। और उन सज्जन-वृन्दों को भी धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझता हूं जिन्होंने अन्ध-श्रद्धालु होते हुए भी मेरे लेखों को पढ़कर उनमे प्रदर्शित भावों को कड़वी घूंटकी तरह निगल कर हजम कर गये और खामोश रह कर अपने धैर्य्य का परिचय दिया। धन्यवाद के समय 'तरुण जैन' के सम्पादक-द्वय एवम् तेरापंथी युवक संघ, लाडनूं के मंत्री महोदय को भी याद करना परमावश्यक है जिनके पत्रों मे ऐसे उग्र लेखों के प्रकाशन का सहयोग मिला।

सुजानगढ़
श्रावण स० २००२

विनीत—
बच्छराज सिंघी

युक्त्यायुक्तं वाक्यं बालेनाऽपि प्रभाषितं ग्राह्यम्।
त्याज्यं युक्ति विहीनं श्रौतं स्यात्स्मार्त्तकं वा स्यात् ॥

भावार्थ—युक्ति (तर्क-प्रमाण) युक्त वाक्य बालक के कहे हुए भी ग्रहण करने (मानने) योग्य हैं, किन्तु युक्ति हीन वाक्य चाहे वेद के हों वा स्मृति के सर्वथा त्याज्य है।

—सत्यामृत-प्रवाह

जैन शास्त्रों की असंगत बातें !

'तरुण जैन' मई सन् १९४१ ई०

टिप्पणी :—

[श्री बच्छराजजी सिंघी का यह लेख अवश्य उन लोगों की आँखें खोलने वाला होगा जिनको शास्त्रों के वचनों की परीक्षा करना ही नास्तिकता और धर्म-द्रोह लगता है। आज जब कि हरेक वस्तु पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने की प्रणाली काम में लाई जाती है, कोई भी विचारवान व्यक्ति यह नहीं बर्दाश्त कर सकता कि शास्त्रों की हरेक बात को बुद्धिपूर्वक समझ में न आने पर भी केवल इसी धाक से कबूल कर लेना पड़े कि वह 'सर्वज्ञ' का वचन है। इसमें कोई शक नहीं कि शास्त्र विचारों का वह समूह होता है, जो मनुष्य का पथ-प्रदर्शन करता है; पर उसका अर्थ यदि यह किया जाय कि शास्त्रों में जो नहीं लिखा, वह विचारणीय ही नहीं; और शास्त्रों में जो लिखा है, उस पर कोई प्रश्न ही नहीं किया जा सकता तो शास्त्रों के प्रति इस तरह का दृष्टिकोण जड़ता उत्पन्न करने वाला होता है, जिसके दुष्परिणाम आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। शास्त्रों के नाम पर आज हमारे धार्मिक, नैतिक और सामाजिक विचारों पर जो हुकूमत की जाती है, उसके कारण हमारी सामाजिक और बौद्धिक प्रगति में कितनी बाधा पहुंच रही है, यह समझदार व्यक्ति फौरन देख सकता है। जो शास्त्र मनुष्य को ज्ञान

देने का दावा कर सकते हैं या करते हैं, वे ज्ञान का विकास करने वाली बुद्धि पर अन्धश्रद्धा की चाबी से ताला क्यों लगा देते हैं ? यह तो मनुष्य की बुद्धि पर शास्त्रों द्वारा शोषण होना कहा जायगा। हम समाज को इस तरह के शोषण का शिकार होने से बचने के लिये आगाह करना अपना कर्तव्य समझते हैं। जिन धर्म-गुरुओं के द्वारा शास्त्रीय शोषण का यह व्यापार निरन्तर चलता है, वे मनुष्य की बौद्धिक जागृति के शत्रु हैं, और उस शत्रुता का वे इसलिये निर्वाह करते हैं क्योंकि उनके पेट का निर्वाह भी इसी से होता है। पर नवयुवकों को इस विषय में अपना कर्तव्य कभी नहीं भूलना चाहिये।

इस विषय में श्री बच्छराजजी एक लेख-माला लिख रहे हैं—जिसका यह पहला लेख है। इसमें जैन शास्त्रों की भौगोलिक बातों पर विचार किया गया है। यह विषय गणना से सम्बन्ध रखता है, इसलिये बहुत सरस नहीं मालूम पड़ता, लेकिन लेख-माला के उद्देश्य को समझने में काफी मददगार होगा। —संपादक]

पृथ्वी का आकार और गति

जैन शास्त्रों में वर्णित कतिपय विषयों पर जब हम निष्पक्ष दृष्टि से विचार करते हैं तो उनमें भी बहुत सी बातें अन्य मजहबों की ही तरह कपोल-कल्पित दृष्टिगोचर होने लगती है। या तो उनमें कोई रहस्य छिपा हो सकता है जिसको हम समझ नहीं पाते हों या ऐसी बातों के रचने वाले खुद ही अन्धेरे में थे

जिन्होंने अन्य मजहब वालों के देखा-देखी, दूकान की भोल रखने की तरह, विना विचारे अंट-संट खाना-पूरी की है। जो कुछ हो, हम जैनों का कर्तव्य यह पुकार रहा है कि इन विषयों पर पड़े हुए परदे को हटाकर इनके असली स्वरूप को प्रकट करने की चेष्टा करें। इस वक्त विज्ञान का प्रकाश इस हद तक अवश्य हो चुका है कि किसी वस्तु के असली रूप पर किसी उद्देश्य से परदा डालकर यदि उसे छिपाया गया हो तो विज्ञान, युक्ति और तर्क की कसोटी पर कस कर देखने वाले व्यक्ति के सामने उसकी असलियत छिपी नहीं रह सकती। आधुनिक शिक्षा में और और चाहे कितने भी अवगुण विद्यमान हों पर एक यह गुण अवश्य है कि वह मनुष्य को मिथ्या अन्ध-विश्वासों से परे ढकेल देती है। जितनी मात्रा मे आधुनिक शिक्षा बढ़ती जायगी, उतनी ही अन्धश्रद्धा कम होती जायगी। हमारा धर्मोपदेशक-वर्ग यह चाहता है कि ऐसी अन्धश्रद्धा कम न होने पावे। इसके लिये वह हर समय प्रयत्न शील भी रहता है, अपने श्रद्धावान श्रावकों मे शिक्षा के विरुद्ध प्रचार भी काफी करता रहता है; मगर शिक्षा का प्रश्न इस समय जीवन-यापन और आजीविका की जटिल समस्याओं के साथ बहुत गहरा सम्बन्धित है, इसलिये सिवाय उन धनवान अन्धविश्वासी श्रावकों के कि जिनको आजीविका के संघर्ष से कुछ समय के लिये फुरसत मिल चुकी है, दूसरा कोई ऐसे प्रचार को अपना नहीं सकता। उपदेशकों को चाहिये तो यह था कि यदि शास्त्रों

की कोई बात सत्य की कसौटी पर ठीक नहीं उतर रही है, तो सच्चे दिल से उसकी सत्यता को ढूंढ निकालने का प्रयत्न करते; जो रहस्य छिपा हुआ है, उसका उद्घाटन करते। मगर बिना परिश्रम ही काम चले तो ऐसा करे कौन ? स्मरण रहे कि वे दिन दूर नहीं हैं कि इस प्रकार की जड़ता का फलोपभोग करना पड़ेगा। इस लेख माला में जैन कहलाये जाने वाले विद्वानों के लिये ही मैंने कुछ विषय और प्रश्न विचारने के लिये उपस्थित करने का विचार किया है जिनका मैं समुचित समाधान नहीं कर सका हूं और साथ ही उनसे यह आशा करता हूं कि वे इनका समाधान करने का प्रयत्न करेंगे।

पहिले हम भौगोलिक विषयों को ही लेते हैं जिनके लिये हमारे पास प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद है। जैन शास्त्रों में शास्वत वस्तुओं को मापने के लिये प्रमाणांगुल के हिसाब से एक योजन को वर्तमान माप से २००० कोस का बतलाया गया है। कइयों ने ४००० कोस का भी माना है, मगर हम २००० कोस का ही एक योजन मान लेते है। एक कोस की दो माइल होती है। हम जिस पृथ्वी-पिण्ड पर बसे हुए हैं वह एक गेन्द की तरह गोल पिण्ड है जिसका व्यास करीब ७९२७ माइल और परिधि करीब २४८५६ माइल की है। इसका वर्ग मील करें तो करीब १९७०००००० (उन्नीस करोड़ सत्तर लाख) माइल होती हैं जिसमें ५२०००००० माइल स्थल भाग और १४५०००००० माइल जल भाग है। जैन शास्त्रों में पृथ्वी को गोल न मान कर चपटी

(समतल) मानी गई है। जम्बूद्वीप (जिसका विस्तृत वर्णन जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति मे हैं) की लम्बाई एक लक्ष योजन और चौड़ाई एक लक्ष योजन बतलाई है यानी वह ४० कोटि माइल की लम्बाई और ४० कोटि माइल की चौड़ाई का एक समतल भूभाग है जिसके वर्ग मील करे तो १६०००००००००००००००(एक शंख साठ पद्म) माइल होती है। जम्बूद्वीप के इस समतल भू-भाग को चारों तरफ से थाली की तरह गोल माना गया है जिसकी परिधि के लिये लिखा गया है कि वह ३१६२२७ योजन ३ गाऊ १२८ धनुष्य १३½ अङ्गुल १ यव १ लिख ६ वालाग्र ५ व्यवहारिये प्रमाणु हैं। गणना की सूक्ष्मता गौर करने काबिल है! यह भी लिखा है कि इस जम्बूद्वीप के यदि एक एक योजन के गोल खण्ड किये जायें तो १० अरब खण्ड होंगे और यदि एक एक योजन के सम चोरस खण्ड किये जायें तो ७९०५६९४१५० खण्ड होकर ३५१५ धनुष्य ६० अङ्गुल क्षेत्र वाकी रह जाता है। अब हम जैन शास्त्र कथित और वर्तमान दोनों के वर्ग माइल पर दृष्टि डालते हैं तो बहुत बड़ा अन्तर पाते हैं। कहां १९ कोटि ७० लक्ष माइल वर्तमान के और कहां १ शंख ६० पद्म माइल जैनों के। पच्चीस हजार माइल की परिधि के एक गोल पिण्ड के वर्ग माइल कितने होंगे, यह एक छोटी कक्षा का विद्यार्थी भी बता देगा। हमारी पृथ्वी पर आज हम एक सिरे से दूसरे सिरे तक आसानी से चारों तरफ विचरण कर रहे हैं। एक निश्चित स्थान से रवाना होकर एक ही दिशा में चलते हुए ठीक उसी स्थान पर

पहुंच जाते हैं जहाँ से हम रवाना हुए थे तो इससे इस बात के साबित (सिद्ध) होने में कोई भी संशय नहीं रह जाता है कि हमने एक गोल पिण्ड पर चक्कर लगाया है। आप कलकत्ते से पश्चिम की तरफ चलते जाइये बम्बई, यूरोप, अमेरिका, जापान होते हुए फिर वापिस कलकत्ता एक ही दिशा में चलते हुए पहुंच जाते हैं। जैन शास्त्रों के बताये हुए पृथ्वी के चपटे (समतल) आकार पर आप एक स्थान से एक ही दिशा में चलते जाइये, नतीजा यह होगा कि आप दूसरे सिरे पर जाकर अटक जायेंगे जिस स्थान से आप रवाना हुए थे, वह पिछले सिरे पर रह जायगा। यही एक पृथ्वी के गेंद की तरह गोल होने का जबरदस्त और प्रत्यक्ष प्रमाण है जिसका किसी प्रकार से भी खण्डन नहीं किया जा सकता।

आइये, अब जरा गतिके विषय में विवेचन करें। इससे हमें कोई बहस नहीं कि सूर्य गति करता है या पृथ्वी। इस वक्त हमे केवल गति की रफ्तार पर ही विचार करना है। जैन शास्त्रों में बताया है कि सूर्य मकर संक्रान्त में ५३०५$\frac{३}{६१}$ योजन की गति एक मुहूर्त्त में करता है यानि करीब २१२२००६६ (दो करोड़ बारह लाख वीस हजार छियासठ) माइल की। एक मुहूर्त्त ४८ मिनट का माना गया है। इस हिसाब से एक मिनट में सूर्य की गति ४४२०८४$\frac{३}{४}$ माइल करीब की होती है जब कि वर्तमान हिसाब से रफ्तार एक मिनट में करीब १७$\frac{३}{५}$ माइल की प्रमाणित होती है। हम कलकत्ते से अपनी जेब घड़ी (Pocket Watch)

सूर्योदय से मिलाकर रवाना होंगे और उसी घड़ी को पश्चिम की तरफ करीब १०४० माइल चल कर सूर्योदय पर देखेंगे तो पूरा ६० मिनट का अन्तर मिलेगा। यानि जो सूर्योदय कलकत्ते में उस घड़ी में ६ वजे हुआ था वह इतनी दूर (१०४० माइल) पश्चिम आ जाने पर उसी घड़ी में ७ वजे होगा। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष साबित हो जाता है कि एक मिनट में करीब १७ माइल की रफ्तार हुई। अब आप विचार सकते हैं कि एक मिनट में १७ माइल की गति और ४४२०४८ माइल की गति में कितना बड़ा अन्तर है !

जैन शास्त्र (भगवती सूत्र) में लिखा है कि कर्क संक्रान्त में सूर्य उदय होते वक्त ४७२६३$\frac{२१}{६१}$ योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है। यानि करीब १८९०५३३७७ (अठारह करोड़ नव्वे लाख तिरेपन हजार तीन सौ सतहत्तर) माइल की दूरी से। मगर हम देख यह रहे हैं कि १०० माइल की दूरी पर जो सूर्य उदय हो गया है, वह यहां यरीब ६ मिनट बाद हमें दिखाई पड़ेगा। यहां पर इस बात को न भूले कि जैन शास्त्रों मे पृथ्वी को चपटी (समतल) माना है। विचारना यह है कि १८९०५३३७७ माइल की दूरी से दृष्टिगोचर होने वाला सूर्य फिर सौ-दो-सौ माइल की दूरी पर ही छिप कहां जाता है ? अगर हम भूमि को गोल मान कर गोलाई की आड का बहाना कर लेते तो भी काम बन सकता था मगर हमने तो इस युक्ति को पहिले से ही कुल्हाड़ी मार दी।

हमारे जैन शास्त्रों की चपटी मानी हुई पृथ्वी पर तो हर स्थान में १२ घन्टे का दिन और १२ घन्टे की रात्रि होनी चाहिये, मगर हम देख रहे हैं कि इस पृथ्वी पर ही कहीं तो ३ महिने तक का दिन और कहीं ३ महिने तक की रात्रि हो रही है। दक्षिण और उत्तर ध्रुवों पर तो एक तरफ सूर्य ६ महिनों तक लगातार दिखाई देता है और दूसरी तरफ ६ महिनों तक सूर्य गायब रहता है।

हो सकता है, जैन शास्त्रों में जिस वक्त इस विषय पर लिखा गया होगा, उस समय अन्तर्जगत के भौगोलिक अनुभव इतने विकसित नहीं हो पाये थे। यह मालूम नहीं हो पाया था कि इसी पृथ्वी पिन्ड के भी किसी भाग पर इस प्रकार महिनों की रात्रि और महीनों का दिन हो रहा है। फिर यह तो कल्पना भी कैसे की जाती कि पृथ्वी धुरी की तरफ ६६½ डिग्री झुकी हुई है। आज तो ऐसे ऐसे साधन उत्पन्न हो गये हैं जिनके जरिये सूर्योदय के समय कलकत्ते में बैठा हुआ व्यक्ति न्यु ओरलिन (New Orleans) में बैठे हुए व्यक्ति को बेतार-टेलीफोन द्वारा वहाँ के सूर्य की बाबत पूछ कर यह उत्तर पाता है कि बस सूर्य वहाँ अस्त हो ही रहा है। इसीलिये तो कहा जा रहा है कि विशाल ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता। यदि इस विषय का इतना ज्ञान और ऐसे साधन उस वक्त हो पाते तो आज इस प्रकार की गलतियां देखने को क्यों मिलतीं ? यह तो भौगोलिक मोटी २ बातें हैं जिनको छोटी कक्षा के विद्यार्थी भी

जानते है। ऋतुओं का बदलना, हवा का बदलना, वर्षा का होना और बदलते रहना आदि अनेक बातें है जिनको वर्तमान विज्ञान के बतलाये अनुसार यथार्थ उतरते देख रहे हैं।

किसी श्रद्धालु श्रावक को जब ऐसी प्रत्यक्ष बातों पर झुकते और रुजू होते देखते हैं तो उपदेशक लोग यह युक्ति पेश करते हैं कि जिन शास्त्रों में इन विषयों का विस्तृत वर्णन था, वे (विच्छेद) लुप्त हो गये ; चौदह पूर्व का जो ज्ञान था, वह (विच्छेद) लुप्त हो गया, आदि। मगर उनसे यह नहीं कहते बनता कि इन विषयों पर काफी लिखा भरा पड़ा है। सूर्यपन्नति, चन्द्रपन्नति, भगवती, जीवाभिगम, पन्नवणा आदि अनेक सूत्रों में इन विषयों पर काफी लिखा मिलता है। फिर भी यह थोड़ी सी बातें जो आज प्रत्यक्ष साबित हो रही हैं, इनमें नहीं पाई जातीं। नहीं क्यों पाई जातीं ? अगर नहीं पाई जातीं तो यह ऊपर लिखी बातें कहा से निकल पड़ीं !

जिन शास्त्रों का अक्षर अक्षर सत्य होने की दुहाई दी जा रही है, एक अक्षर को भी कम-ज्यादा समझने पर अनन्त संसार-परिभ्रमण का भय दिखाया जा रहा है ; उनमें लिखी बात अगर प्रत्यक्ष के सामने यथार्थ न उतरें तो विवेकशील मनुष्य का यह कर्तव्य हो जाता है कि इन शास्त्रों में सत्य क्या क्या है, इसकी परीक्षा करे। विज्ञान, युक्ति, न्याय और तर्क की कसौटी पर कस कर यथार्थ में जो सत्य उतरे, उसी पर अमल करे।

इस लेख का विषय विशेषतः गणना विषयक (Matter of

calculation) है; इसलिये सत्य-अन्वेषक को इसकी सत्यता ढूंढ़ निकालने में विशेष कठिनाई नहीं होगी।

आशा है, जैन विद्वान् 'तरुण जैन' द्वारा या मुझ से सीधे (Direct) पत्र-व्यवहार करके मेरे इन प्रश्नों का समाधान करने का प्रयास करेंगे।

'तरुण जैन' जून सन् १९४१ ई०

टिप्पणी:—

[श्री वच्छराजजी की लेखमाला का यह दूसरा लेख है। पहले लेख की भाँति इसमें भी जैन शास्त्रों के उन भौगोलिक विषयों का विवेचन है, जो विज्ञान की तुला पर खरे नहीं उतरते। उनके विषय में, जैसा आज तक रूढ़ि-पंथी लोग करते आए हैं, केवल यह कह कर ही अपने को समझाने का प्रयास किया जा सकता है कि वे 'शास्त्रों की बातें' हैं ! आज तो समाज की जो विचार-भूमिका है, उस पर से यह स्पष्ट है कि शास्त्र की जो बात है, वह सिद्ध हो या न हो, समझ में आए या न आए, पर सच तो वह है ही। सच उसे मानना ही पड़ेगा, अगर आपको धर्मात्मा बनने का शौख है तो। श्री वच्छराजजी की लेखमाला की यही 'अपील' है, जिसके द्वारा वे पाठकों में बुद्धिपूर्वक हरएक विषय पर विचार करने की सच्ची प्रेरणा उत्पन्न करना चाहते हैं। हमें खुशी है, कि 'तरुण' के कई पाठकों ने इस उद्देश्य को ध्यान में रख कर लेखमाला के प्रति अपनी पसन्दगी जाहिर की है। आशा है, यह लेखमाला हर विषय में 'शास्त्रों की बातों' की दुहाई देकर मनुष्य की बुद्धि पर अवांछित गुरुडम का भार लादनेवाले गुरुओं में भी सद्बुद्धि जागृत करेगी।

—संपादक]

पृथ्विस्थित द्वीप-समुद्र और उनका परिमाण

गत् मास के 'तरुण जैन' में मैंने अपने लेख में यह दिखाने का प्रयास किया था कि जैन शास्त्रों में भौगोलिक विषयों पर

बहुत सी बाते ऐसी लिखी हुई हैं जो भौगोलिक अन्वेषणों से प्राप्त हुए ज्ञान की सत्यता के मुकाबले में गलत सावित हो रही है, मनुष्य के अन्धविश्वासों की खिल्ली उड़ा रही है। उस लेख में मैंने पृथ्वी की लम्बाई-चौड़ाई के बाबत केवल जम्बूद्वीप की लम्बाई-चौड़ाई बतला कर वर्तमान की बताई हुई पृथ्वी के माप से मुकाबला करके दिखाया था। मगर जैन सूत्रों में बताया गया है कि ऐसे ऐसे असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र इस पृथ्वी पर स्थित हैं और साथ ही यह भी कहा गया है कि प्रत्येक द्वीप से उस के चारों तरफ का समुद्र माप में दुगुणा और प्रत्येक समुद्र के बाहर चारों तरफ का द्वीप भी माप में दुगुणा है। इस दुगुणा करते जाने के क्रम को 'पन्नवणा सूत्र' के पन्द्रहवे इन्द्रियपद में एक चार्ट देकर चालीस संख्या तक तो द्वीपों तथा समुद्रों के नाम देकर बताया है और इसके आगे असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्रों को इसी दुगुणे क्रम से गणना करते जाने का कह कर पृथ्वी को अत्यन्त बड़ी दिखाने की कल्पना की है, जो विचारशील पाठकों को नीचे दिये हुए उस 'पन्नवणा' सूत्र की तालिका से विदित हो जायगा। शास्वत बस्तुओं के माप में एक योजन चार हजार मील का माना गया है :—

द्वीप एवं समुद्रों के नाम	योजन संख्या
१ जम्बू द्वीप	१०००००
२ लवण समुद्र	२०००००
३ धातकी खण्ड द्वीप	४०००००

४ कालोदधि समुद्र	८०००००
५ पुष्कर द्वीप	१६०००००
६ पुष्कर समुद्र	३२०००००
७ वारुणी द्वीप	६४०००००
८ वारुणी समुद्र	१२८०००००
९ क्षीर द्वीप	२५६०००००
१० क्षीर समुद्र	५१२०००००
११ घृत द्वीप	१०२४०००००
१२ घृत समुद्र	२०४८०००००
१३ इक्षु द्वीप	४०९६०००००
१४ इक्षु समुद्र	८१९२०००००
१५ नन्दीस्वर द्वीप	१६३८४०००००
१६ नन्दीस्वर समुद्र	३२७६८०००००
१७ अरुण द्वीप	६५५३६०००००
१८ अरुण समुद्र	१३१०७२०००००
१९ ऋण द्वीप	२६२१४४०००००
२० ऋण समुद्र	५२४२८८०००००
२१ वायु द्वीप	१०४८५७६०००००
२२ वायु समुद्र	२०९७१५२०००००
२३ कुण्डल द्वीप	४१९४३०४०००००
२४ कुण्डल समुद्र	८३८८६०८०००००
२५ संख द्वीप	१६७७७२१६०००००

२६ संख समुद्र	३३५५४४३२०००००
२७ रुचक द्वीप	६७१०८८६४०००००
२८ रुचक समुद्र	१३४२१७७२८०००००
२९ भुजङ्ग द्वीप	२६८४३५४५६०००००
३० भुजङ्ग समुद्र	५३६८७०९१२०००००
३१ कुस द्वीप	१०७३७४१८२४०००००
३२ कुस समुद्र	२१४७४८३६४८०००००
३३ कुच द्वीप	४२९४९६७२९६०००००
३४ कुच समुद्र	८५८९९३४५९२०००००
३५ हार द्वीप	१७१७९८६९१८४०००००
३६ हार समुद्र	३४३५९७३८३६८०००००
३७ हारवर द्वीप	६८७१९४७६७३६०००००
३८ हारवर समुद्र	१३७४३८९५३४७२०००००
३९ हारवर भास द्वीप	२७४८७७९०६९४४०००००
४० हारवर भास समुद्र	५४९७५५८१३८८८०००००

इस तालिका में बताया हुआ उन्चालीसवां हारवरभास द्वीप १०९९५११६२७७७६००००००००० मील के क्षेत्र का लम्बा-चौड़ा गोलाकार है और चालीसवाँ हारवरभास समुद्र २१९९०२३२५-५५५२००००००००० मील क्षेत्र लम्बा-चौड़ा गोलाकार है। पृथ्वीके असंख्य द्वीप—समुद्रों के आखिर का समुद्र स्वयं-भू-रमण नामी समुद्र है। यह वही स्वयं-भू-रमण समुद्र है जिसके बड़ेपन की उपमा जैनी लोग बड़े गर्व से दिया करते हैं। जम्बूद्वीप के

मध्यभाग में मेरु पर्वत के वीचोंवीच से लेकर इस ऊपर वताये हुए हारवरभास समुद्र तक के सर्व क्षेत्र तक के भी वर्गमील निकालने का यदि पाठक कष्ट उठावें तो उन्हें अनुभव होगा कि हमारे अनन्त ज्ञानियों ने इन द्वीप-समुद्रों के चालीस की संख्या तक तो भिन्न भिन्न नाम वता दिये और वाकी के द्वीप-समुद्रों को 'असंख्य' की उपाधि से विभूपित करके इतने वड़े क्षेत्र को जो इस २४८५६ मील के घेरे की पृथ्वी के गोल पिण्ड में छिपा पड़ा है—हमें वतला कर कितने वड़े ज्ञान का लाभ पहुंचाने की हमारे पर कृपा की है ! जम्बूद्वीप से प्रारम्भ करके पुष्कर द्वीप तक अढ़ाई द्वीप कहलाता है। इस अढ़ाई द्वीप तक तो १३२ सूर्य और १३२ चन्द्र परिभ्रमण कर रहे हैं और दिन-रात हो कर, समय का माप माना गया है और आवादी भी मानी गई है, परन्तु इसके वाद के असंख्य-द्वीप समुद्रों में न आवादी है और न समय का माप है यानी सूर्य-चन्द्र वहां परिभ्रमण नहीं करते, स्थिर हैं। वहां प्रकाश सर्वदा एक-सा है। अढ़ाई द्वीप के अलावा और द्वीप जव आवाद नहीं, वहां समय का माप नहीं, सव असंख्य द्वीप-समुद्रों की स्थिति एक सी है, तो चालीस तक की ही संख्या के नाम वताने का कष्ट क्यों उठाया गया इसकी कल्पना समझ में नहीं आती। इस प्रकार योजनों के माप में दुगुणे क्रम से वढ़ते जाने वाले द्वीप और समुद्रों को वढ़ाते वढ़ाते असंख्य की गणना से वड़ी होने की पृथ्वी की कल्पना करने का केवल मात्र यही कारण मालूम पड़ता है कि पृथ्वी की असली

स्थिति मालूम होने के साधन उस जमाने में मौजूत नहीं थे (जिस जमाने में ये सूत्र रचे गये) और न इतनी लम्बी यात्रा के यानी सारी पृथ्वी-भ्रमण कर आ सकने के साधन मौजूद थे। न तार और बेतार था और न रेडियो (Radio) वगैरा था कि पूछ-ताछ से पता लगाया जा सकता। ऐसी सूरत में बूज-बुजागरजी की तरह सवाल का जवाब देना आवश्यक समझ कर ऐसी ऐसी बे-बुनियादी कल्पनाएँ की गई हों तो आश्चर्य क्या है ?

सूर्य-प्रज्ञप्ति के आठवे प्राभृत में लिखा है कि भरत क्षेत्र का सूर्य अस्त होकर महाविदेह क्षेत्र में उदय होता है। जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्र भ्रमण करते हुये माने गये हैं। जो सूर्य भरत क्षेत्र में आज अस्त होकर महाविदेह जाकर उदय हुआ है, वह सुर्य वापिस तीसरे दिन भरत क्षेत्र में आकर उदय होगा। दोनों सूर्यों के उदय होने का क्रम एक दिन अन्तर से बताया गया है। किन्तु हम इस पृथ्वी के वासिन्दे केवल एक ही सूर्य को देख रहे हैं। आप करीब १०४० मील प्रति घन्टे रफ्तार से चलने वाले हवाई जहाज को मध्यान्ह के वक्त सूर्य के साथ रवाना कर दीजिये। जहां से वह रवाना हुआ था, उसी जगह और उसी वक्त दूसरे दिन उसी सूर्य महाराज को मस्तक पर लिये हुये सही सलामत पहुंच जायगा; दूसरे सूर्य महाराज का कहीं दर्शन तक न होगा। अगर हम अमेरिका को महाविदेह क्षेत्र मान लें तो सूर्य का भरत क्षेत्र में अस्त होकर

महाविदेह में उदय होने तक के कथन की बहुत थोड़े अंशों में संगति मिलाने की चेष्टा कर सकते हैं। मगर इन सूत्रों की मानी हुई महाविदेह भी तो बड़ी विचित्र है, जिसको थोड़ा सा बतला देना यहां उचित होगा। 'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति' में महाविदेह क्षेत्राधिकार में लिखा है कि महाविदेह क्षेत्र ३३३८४ ४/१९ योजन यानी करीब, १३४७३८००० मील चौड़ा और ३३७६७ ७/१९ योजन यानी करीब १३५०७६००० मील लम्बा है। इसके चार विभाग हैं—पूर्वविदेह, पश्चिम विदेह, उत्तर कुरु और देव कुरु। पूर्व और पश्चिम विदेह में रहने वाले मनुष्य ५०० धनुप यानी १७५० फीट लम्बे हैं और देव कुरु तथा उत्तर कुरु में रहने वाले तीन कोस लम्बे कद के हैं। इन मनुष्यों की ऊमर उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व की है यानी ७०५६०००००००००००००००००० वर्ष की है। इस महाविदेह क्षेत्र का वर्णन सूत्रों में बहुत विशद और विस्तार पूर्वक दिया हुआ है। केवल नमूने के तौर पर ऊपर की चन्द लाइनें लिख दी हैं। बिचारी अमेरिका के साथ इस विचित्र महाविदेह की संगति का मिलान किस तरह हो सकता है, यह तो पाठकों के विचारने का विषय है। सूत्रों की इन बातों को अक्षर-अक्षर सत्य मानने वाले सज्जनों से मैं अनुरोध करता हूं कि वे इन सब बातों का संतोषजनक उत्तर दें। तर्क, युक्ति, प्रमाण से सूत्रों की बताई हुई बातों को साबित करने का प्रयास करें। सूत्रों में इन सब विषयों का विस्तृत और सच्चा वर्णन था, मगर वह विच्छेद (लुप्त) हो गया; ऐसा कह कर लीपा-

पोती करने का प्रयास छोड़ दें। पिछले महीने के लेख में और इस में मैंने केवल वे ही भौगोलिक बातें पाठकों के समक्ष विचारार्थ रखने का प्रयास किया है जिनको ले कर जैन शास्त्रों की इस सम्बन्ध की बताई हुई बातों को हम गणना और युक्ति से गलत साबित होती हुई देख रहे हैं। अब मैं अगले लेखों में वे भौगोलिक बाते, जिन में जैन सूत्रों में पर्वत, समुद्र, द्रह, वन, नदी, नगर आदि का बढ़ा वढ़ा कर कल्पनातीत वर्णन किया है, बताने का प्रयास करूंगा। भौगोलिक विषयों के अलावा अन्य अनेक विषयों में भी ऐसे-ऐसे प्रसंग हैं जिन्हें हम असत्य या असम्भव और अस्वाभाविक की श्रेणी में रख सकते हैं। अगले लेखों में इन सब का भी दिग्दर्शन कराया जायगा।

'तरुण जैन' जुलाई सन् १९४१ ई०

पर्वत, समुद्र, नदी और नगर

गतांक में जैन सूत्र पन्नवणा के अनुसार पृथ्वी सम्बन्धी असंख्यात योजनों की लम्बी-चौड़ी कल्पना को लिखते समय मेरे हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस सम्बन्ध की ऐसी हवाई कल्पना किन्हीं अन्य धर्मावलम्बियों के धर्म-ग्रन्थों में भी कहीं की गई है क्या ? तो सनातन धर्म की श्री मद्भागवत के पञ्चम स्कन्ध में इसी कल्पना से बहुत मिलती-जुलती कल्पना पाई गई। श्रीमद्भागवत के पञ्चम स्कन्ध में इस प्रकार वर्णन है कि इस पृथ्वी पर सात द्वीप और सात समुद्र हैं। प्रत्येक द्वीप के बाद एक समुद्र और उस समुद्र के बाद एक द्वीप लगातार है। जैन शास्त्रों की ही तरह प्रथम द्वीप को, जिसका नाम भी जम्बू द्वीप ही है, एक लाख योजन का थाली जैसा समतल और गोलाकार माना है। इस जम्बू द्वीप के चारों तरफ क्षार (लवण) समुद्र गोलाकार एक ही लाख योजन का है। मगर जैन शास्त्रों में इस लवण (क्षार) समुद्र को दो लाख योजन का माना गया है। जैन शास्त्रों में प्रत्येक द्वीप के बाहर का समुद्र उस द्वीप से दुगुणा बड़ा माना है; मगर इन्होंने जितना माप द्वीप का बताया है उतना ही उसके बाहर के समुद्र का बतलाया है और प्रत्येक द्वीप को उसके पहले

द्वीप से दुगुणा बड़ा माना है। एक बात यह भी जान लेने की आवश्यकता है कि सनातन धर्म के ग्रन्थों में एक योजन को चार कोस का माना गया है मगर जैन शास्त्रों में शास्वत वस्तुओं के लिये एक योजन २००० कोस का यानी चार हजार माइल का माना गया है और अशास्वत वस्तुओं के लिये चार कोस का माना गया है। पृथ्वी के द्वीप, समुद्र आदि शास्वत ही माने गये हैं। श्रीमद्भागवत के पञ्चम स्कन्ध के द्वीप और समुद्रों के नाम और माप आप को नीचे दी हुई तालिका से आसानी से मालूम हो जायँगे।

द्वीप और समुद्रों के नाम	योजन
१ जम्बू द्वीप	१०००००
२ क्षार समुद्र	१०००००
३ प्लक्ष द्वीप	२०००००
४ इक्षुरस समुद्र	२०००००
५ साल्मलि द्वीप	४०००००
६ सुरा समुद्र	४०००००
७ कुश द्वीप	८०००००
८ घृत समुद्र	८०००००
६ क्रौंच द्वीप	१६०००००
१० क्षीर समुद्र	१६०००००
११ शाक द्वीप	३२०००००
१२ दधि समुद्र	२२०००००
१३ पुष्कर द्वीप	६४०००००
१४ सुधा समुद्र	६४०००००
	कुल २५४०००००

२५४०००००० योजन की २०३२०००००० माइल हुईं। इस प्रकार श्रीमद्भागवत में इस पृथ्वी को २० कोटि ३२ लाख माइल का एक समतल गोलाकार भू-भाग बताया है। इस पृथ्वी पर ये द्वीप और समुद्र किस तरह बने, इसकी एक विचित्र कल्पना इन महापुरुषों ने कैसी बोधगम्य की है, उस पर हंसी आये बिना नहीं रह सकती। लिखा है कि पियवृत नाम के एक ईश्वरभक्त राजा ने सूर्य से भी बढ़ कर तेज वाला एक रथ बनाया और उससे इस पृथ्वी पर जम्बू द्वीप के चौगिर्द सात दफा चक्कर काटे। उस रथ के पहिये जहां जमीन में गड़े थे उन गड्ढों के तो समुद्र बन गये और रथ के दोनों पहियों के बीच की जमीन जो गड्ढा बनने से बच गई थी, उसके द्वीप बन गये। बलिहारी है ऐसे रथ की जिसने समुद्रहीन-संसार को अपने पहियों से गड्ढे बना कर सजल कर दिया। ऐसी ऐसी हवाई कल्पनाएँ इन सर्वज्ञों ने किस उद्देश्य से की, यह समझने की चेष्टा करने पर भी समझ में नहीं आता।

सनातन धर्म के ग्रंथों मे इन द्वीप—समुद्रों पर प्रकाश पहुंचाने वाला सूर्य एक ही माना गया है मगर जैन शास्त्रों मे जहाँ तक मनुष्यों की आबादी का सम्बन्ध है, १३२ सूर्य माने गये है। जम्बू द्वीप में प्रकाश का काम करने वाले केवल दो सूर्य माने हैं। वर्तमान दक्षिण और उत्तर ध्रुवों की तरफ तीन तीन महीनों तक एक ही सूर्य लगातार दिखाई देता है, एक क्षण भी ओझल नहीं होता। इससे यह बात साबित होने में कोई

त्रुटि नहीं रहती कि हमारी पृथ्वी पर प्रकाश करने वाला सूर्य एक ही है। पाठक वृन्द, एक सूर्य को देखते हुए भी दो सूर्यों का मानना शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता को किस हद तक प्रमाणित करता है, इसे विचार कर देख लें। श्री भास्कराचार्य रचित एक प्राचीन ज्योतिष ग्रंथ "सूर्य सिद्धांत" के बारहवें अध्याय में हमारी इस पृथ्वी को स्पष्टतया गेन्द की तरह गोल और भ्रमण करती हुई मानी है, जैसा कि वर्तमान विज्ञान ने मान रखा है। भारतवर्ष के ज्योतिषी इसी सूर्य सिद्धान्त के आधार पर यहाँ के पञ्चाङ्ग बनाते हैं। सूर्य सिद्धान्त में भी इस पृथ्वी पर प्रकाश पहुंचाने वाला सूर्य एक ही माना है। ऐसी सूरत में दो सूर्य मानने वालों के लिये प्रत्यक्ष और (व्यावहारिक) आगम दोनों प्रमाणों के मुकाबले में अपनी दो सूर्य की मान्यता को साबित करने की पूरी जिम्मेवारी आ पड़ती है।

गतांक में मैंने यह वादा किया था कि अगले लेख में जैन शास्त्रों की वे भौगोलिक बातें, जिनमें पर्वत, समुद्र, नदी, नगर आदि का बढ़ा बढ़ा कर कल्पनातीत वर्णन किया है, बताने का प्रयास करूंगा। उसी वादे के अनुसार सर्व प्रथम पर्वतों को ही लीजिये। मेरु पर्वत ९९००० योजन यानी ३९६०००००० (उनचालीस कोटि, साठ लाख) माइल जमीन से ऊँचा है और १००० योजन यानी ४०००००० माइल जमीन के अन्दर है और इसकी चौड़ाई १०००० योजन यानी ४०००००००० माइल

की है जिसकी परिधि ३१६२३ ३/११ योजन यानी १२७६४१००० माइल करीब की है। इस मेरु पर्वत के ऊपर का जो सुरम्य और विस्तृत वर्णन है, वह देखते ही बनता है मगर उसका बयान कर इस लेख के उद्देश्य से बाहर जाकर लेख का मैं कलेवर बढ़ाना नहीं चाहता। ऊँचाई-चौड़ाई सर्व पर्वतों से ज्यादा इस मेरु पर्वत की है परन्तु जैन शास्त्रों के छोटे पर्वत भी हजारों लाखों माइलों से कम ऊँचाई के नहीं हैं। समुद्रों के लम्बे-चौड़े वर्णन तो आप गतांक में पन्नवणा सूत्र की तालिका से देख ही चुके हैं। योजनों को २००० से गुणा करते जाइये, प्रत्येक समुद्र के कोस निकलते जायँगे मगर वहां तो शेष में असंख्यात योजनों की कल्पना ने २००० से गुणा करके कोस बनाने के कष्ट उठाने की गुञ्जाइश ही नहीं रहने दी।

शास्त्रों में बताई हुई महाविदेह क्षेत्र की सीता और सीतोदा नाम की महा नदियों की लम्बाई तो दरकिनार रखिये, केवल चौड़ाई ही पांच पांच सौ योजन यानी बीस बीस लाख माइल की बताई गई है। इन बड़ी बड़ी नदियों को जाने दीजिये, हमारे भारत क्षेत्र (जिसमें हम आबाद हैं) में बहने वाली गंगा नदी जो चुल्ल-हेमवन्त पर्वत के पद्म द्रह से निकल कर लवण समुद्र में जा कर गिरी है, पद्म द्रह के पास ६ १/४ योजन यानी १२५०० कोस की चौड़ी है और लवण समुद्र के पास ६२ १/२ योजन यानी १२५००० कोस चौड़ी है। इस गंगा नदी

की लम्बाई जब हम अढ़ाई द्वीप के नकशे पर दृष्टि डाल कर देखते हैं तो मालूम होता है कि पद्म द्रह से मानुष्योतर पर्वत तक इसने करीब २५ अरब माइल लम्बा भू-भाग घेर लिया है। यह है आपकी छोटी सी गंगा नदी जिसकी चौड़ाई १२५००० कोस और लम्बाई २५ अरब माइल की है।

अब लीजिये नगरों का कुछ वर्णन। जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति में विजया राजधानी का वर्णन आता है। वहाँ इस विजया राजधानी को १२००० योजन यानी २४०००००० (दो कोटि चालीस लाख) कोस लम्बी और इतनी ही चौड़ी तथा ३७९४८ योजन से कुछ अधिक इसकी परिधि बतलाई है। क्या इतने लम्बे चौड़े नगर भी आबाद हो सकते हैं ?

और क्या केवल नगर के बड़ेपन ही की कल्पना करनी है, उसमें होने वाले सारे कार्य-कलापों को दृष्टि से ओझल कर देना है ? खैर, २४०००००० कोस लम्बी चौड़ी राजधानी तो अपने को देखना नसीब कहां मगर जम्बूद्वीप पन्नति में हमारे भारत की अयोध्या का जो वर्णन आता है उसकी सैर तो कर लें। इस अयोध्या का नाम वहां पर बनिता भी दिया है। यह वनिता १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौडी बताई गई है। इन योजनों को शास्वत माप के २००० कोस के हिसाब से गुणा करें तब तो हमारी अयोध्या २४००० कोस लम्बी और १८००० कोस चौड़ी हो जाती है जिसमें

वर्तमान भूगोल जैसे दो पिन्ड समा सकते हैं मगर अशास्वत माप के हिसाब से देखें तो भी ९६ माइल लम्बी और ७२ माइल चौड़ी यानी ६६१२ वर्गमील की बड़ी नगरी हो जाती है। कल्पना की भी कोई हद होती है। पर्वत, समुद्र, नदियों, नगर आदि के इन लम्बे चौड़े मापों के आंकड़ों को बताते हुए इस बीसवीं सदी में जी तक नही चाहता मगर क्या करें शास्त्रों के अमृत वचनों की सत्यता की तलाश में उभ्फड़ भटक कर भी यदि सत्यता निकाली जा सके तो मानव-जाति का बड़ा भारी उपकार होगा।

इस लेख के साथ मेरी भौगोलिक विषय सम्बन्धी चर्चा समाप्त होती है। एक ही विषय पर लगातार लिखना रुचिकर प्रतीत नहीं हो सकता, अतः अगले लेख में खगोल पर लिखूंगा। भूगोल सम्बन्धी इन तीन लेखों में मैंने यह बताने का प्रयास किया है कि शास्त्रो की बातों में सत्य का कितना अश होता है। जिन लोगों को शास्त्रों की हरेक बात की सत्यता पर विश्वास है और जो आदमी विचारपूर्वक यह समझते हैं कि शास्त्रों के वचनों में किसी प्रकार की असत्यता नहीं हो सकती, उन्हें अविलम्ब मेरे लेखों की बातों का समाधान करने का प्रयास करना चाहिये जो जैन शास्त्रों की बातों को गलत साबित कर रही है।

'तरुण जैन' अगस्त सन् १९४१ ई०

खगोल वर्णन

गतांक में मैंने वादा किया था कि अगले लेख में खगोल के विषय में लिखूंगा। उसी वादे के अनुसार इस लेख में जैन शास्त्रों के खगोल विषय का कुछ वर्णन करूंगा। मैंने यह पहिले ही कहा है कि मेरे खयाल से जैन शास्त्रों में भी असत्य, असम्भव और अस्वाभाविक कल्पनाएँ बहुत हैं। मेरा उद्देश्य यही है कि उनमें से कुछ नमूने के तौर पर इन लेखों द्वारा जैन जगत् के सामने रखकर समाधान कराने का प्रयत्न करूँ। मेरे तीन लेख 'तरुण जैन' के गत तीन अङ्कों में निकल चुके हैं मगर जैन कहलाने वाले उन विद्वान सज्जनों ने जिनको शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता पर मोह है, अभी तक उन लेखों से असत्य साबित होने वाले प्रसंगों के समाधान करने का प्रयास नहीं किया। मैं आशा करता हूं कि अब भी वे सत्य को साबित करने में और समझाने में प्रयत्नशील होंगे।

खगोल में सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र, तारे आदि की आकाश-मण्डल में गति, स्थिति, संस्थापन, दूरी व पारस्परिक आकर्षण आदि का वर्णन- होता है।

जैन शास्त्रों में इस अनन्त आकाश के दो भाग कर दिये गये

हैं। लोक आकाश और अलोक आकाश। इस लोक आकाश में असंख्य सूर्य और असंख्य चन्द्र हैं जिनमें अढाई द्वीप तक जहां तक कि मनुष्यों की आवादी का सम्वन्ध है, १३२ सूर्य और १३२ चन्द्र वताये हैं। सर्व प्रथम हम सूर्य का ही वर्णन करेंगे। जैन शास्त्रों में जम्बू द्वीप में हमारे यहां पर दो सूर्य प्रकाश का काम करते हुए वताये गये हैं जिनके बावत मेरे गत लेखों में लिखा ही जा चुका है। हमारे यहां की वर्त्तमान स्थिति से स्पष्टतया एक ही सूर्य का होना साबित हो रहा है। इसलिये दो सूर्य का वतलाना असत्य है। हमारे इस सूर्य को जैन शास्त्रों में पृथ्वी से ८०० योजन यानी ३२००००० (वत्तीस लाख) माइल ऊँचा वताया है और यह भी वताया है कि सूर्य का एक गोलाकार विमान है जिसकी लम्बाई $\frac{४८}{६१}$ योजन यानी ३१४७$\frac{३२}{६१}$ माइल और चौड़ाई भी इतनी ही और मोटाई $\frac{२४}{६१}$ योजन यानी १८३६$\frac{४८}{६१}$ माइल की है। इस विमान का नाम सूर्यावतंसक विमान है जिस को १६००० देव सर्वदा उठाये हुए आकाश में भ्रमण कर रहे हैं। इन १६००० देवों का रूप इस प्रकार वताया है कि ४००० देव पूर्व दिशा में सिंह का रूप किये हुए, ४००० देव दक्षिण दिशा में हाथी का रूप किये हुए, ४००० देव पश्चिम दिशा में वृषभ का रूप किये हुए और ४००० देव उत्तर दिशा में अश्व का रूप किये हुए हैं। सूर्य देव के चार अग्रमहिषी यानी पटरानियां हैं, और एक एक पटरानी के चार चार हजार देवियों का परिवार है। इस

प्रकार यह १६००४ देवियां हैं। सूर्य देव की इन पटरानियों के नाम इस प्रकार बताये हैं—सूर्यप्रभा, अर्चिप्रभा, अर्चिमालिनी और प्रभंकरा। इन १६००४ देवियों के साथ नाना प्रकार के भोगोपभोग भोगते हुए सूर्य देव विचरण कर रहे हैं। सूर्य देव रात-दिन भ्रमण कर रहे हैं और भ्रमण करने में ही सुख अनुभव कर रहे हैं। इन शास्त्रों के अनुसार सूर्य देव का हुलिया सुनिये। उनके मुकुट में सूर्यमण्डल का चिन्ह है और उनका वर्ण तप्त स्वर्ण जैसा दिव्य है। सूर्य देव के ४००० सामन्तिक देव यानी भृत्य वर्ग सर्वदा सेवा में तत्पर रहते हैं और १६००० देव उनके आत्मरक्षक यानी Body Guards हैं। सूर्य देव की, हाथी, घोड़ा, रथ, महेप, पैदल, गंधर्व, नृत्य-कारक यह सात अनिकाएँ हैं जिनकी संख्या ५८०००० से बतलाई गई है। सूर्य देव की सम्पत्ति चन्द्र को छोड़कर ज्योतिषी देवों में सब से अधिक है, अलबत्ता सूर्यदेव से चन्द्र देव महा सम्पत्तिशाली हैं। जैन शास्त्रों में सूर्य-भ्रमण के १८४ मण्डल बताये गये हैं जिनमें जम्बू द्वीप में ६५ मंडल की कल्पना की है। हमारी वर्तमान भूगोल सब इस जम्बू द्वीप में ही मानी जा रही है। इन १८४ मंडलों पर भ्रमण करते हुए सूर्य द्वारा भिन्न भिन्न समय में होने वाले अहोरात्रि (दिन रात) को भिन्न भिन्न प्रकार से बड़े छोटे बतलाये हैं परन्तु बड़े से बड़े दिन को १८ मुहूर्त यानी १४ घन्टे २४ मिनट तथा बड़ी से बड़ी रात्रि को १८ मुहूर्त यानी १४ घन्टे २४ मिनट और छोटे

से छोटे दिन को १२ मुहूर्त यानी ६ घन्टे ३६ मिनट तथा छोटी से छोटी रात को १२ मुहूर्त यानी ६ घन्टे ३६ मिनट का होना बतलाया है। ऐसा किसी एक सूत्र में ही नहीं बल्कि सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि अनेक सूत्रों में बताया गया है। जम्बू द्वीप में दिन और रात को इस प्रकार बड़े से बड़ा (उत्कृष्ट) १८ मुहूर्त यानी १४ घन्टे २४ मिनट बड़ा और छोटे से छोटा (जघन्य) १२ मुहूर्त यानी ६ घन्टा ३६ मिनट का बतलाना अच्छी तरह से यह साबित कर रहा है कि इन सर्वज्ञों के ब्रह्म ज्ञान की दौड़ हमारे भारतवर्ष के बाहर की नहीं थी। अगर इन्हे भारत से बाहर के दिन-रात के बड़े-छोटेपन का ज्ञान होता तो (दक्षिण और उत्तर ध्रुवों की तो बात ही छोड़िये, जहां छह छह और तीन तीन महीने बड़े रात और दिन होते हैं) इङ्गलेंड की राजधानी लन्दन, जिस जगह जून महीने में करीब २२½ मुहूर्त (१८ घन्टे का) बड़ा दिन और ७½ मुहूर्त (६ घन्टे की) रात तथा दिसम्बर में ७½ मुहूर्त का यानी ६ घन्टे का दिन और २२½ मुहूर्त यानी १८ घन्टे की रात होती है, के समय का तो वे सही सही लेखा बतलाते। एक घन्टे का १¾ मुहूर्त होता है। जैन शास्त्रों के अक्षर अक्षर को सत्य मानने वाले विद्वान सज्जनों से मैं विनम्र शब्दों में यह पूछना चाहता हूं कि 'क्या यह लन्दन (London) शास्त्रों के बताये इस जम्बू द्वीप से कहीं बाहर का क्षेत्र है कि जहां के दिन रात के बड़े-छोटेपन में चार-चार पांच-पांच मुहूर्त का अन्तर पड़ रहा

है'। पृथ्वी की गोलाई को जब हम यह बताकर साबित करते है कि पूर्व या पश्चिम एक ही दिशा में चलता हुआ मनुष्य जब उसी स्थान में पहुंच जाय जहां से वह रवाना होता है तो सिवाय इसके और कुछ हो ही नहीं सकता कि उसने एक गेन्द की तरह गोल पिण्ड पर चक्कर काटा है। तर्क को न समझने वाले भोले सज्जन इस पर भी कहने लगते हैं कि क्या आपने कभी इस तरह से जा कर अजमा के देखा है। ऐसे सज्जनों से कभी तो मैं कह बैठता हूं कि अगर आप हमारे साथ यह शर्त करें कि हम आपको हवाई जहाज से इस प्रकार पृथ्वी की परिक्रमा कराकर इस बात को साबित कर दें तब तो भ्रमण का सारा खर्च और ५०००) रुपया आप हमें दें और हम साबित न कर सकें तो हम आपको देंगे। मगर इस लंदन में १८ घन्टे यानी २२½ मुहूर्त (जैन शास्त्रों से विरुद्ध) बड़े होने वाले दिन और रात के लिये तो शंका करने की गुञ्जाइश इस-लिये भीं नहीं रही कि अनेक सज्जन London में रहकर आये हैं जो इन बड़े अहोरात्रि (दिन और रात) को अच्छी तरह अनुभव कर चुके हैं। सच बात तो यह है कि उस वक्त इन विषयों के जानने के लिये कोई साधन मौजूद नहीं थे, जिस वक्त यह शास्त्र रचे गये। इसलिये बूजबुजागरजी की तरह सवाल का जवाब पूरा करने का प्रयास किया गया मालूम होता है। कुछ लोगों का यह खयाल है कि धर्म-शास्त्रों की वे बातें जो मनुष्य के मानसिक विकारों को शुद्ध करने के लिये विधान

रूप में लिखी गई हैं, सुन्दर और सच हैं; बाकी की सब बातें ऐसे ही लिख दी गई हैं। मगर मैं कहूंगा कि ऐसा खयाल करने वालों को सोचना जरूरी है कि मनोविकारों को शुद्ध करने का विधान देने वालों के लिये क्या इस प्रकार अंट संट असत्य खाना पूरी करना क्षम्य है ? जिन विषयों का उनको ज्ञान नहीं था, उन पर चुप ही रहते। मगर चुप रहें कैसे ? चुप रहने से सर्वज्ञता में जो बट्टा लगता !

विज्ञान के नाना तरह के आविष्कारों ने आज खगोल और भूगोल के प्रश्नों को प्रत्यक्ष रूप से हल कर दिया है। इस समय इस विज्ञान-युग में यह कहना कि सूर्यदेव के सूर्यावतंसक विमान को १६००० देव हाथी, घोड़ा, बैल और सिंह का रूप बनाये आकाश में उड़ाये फिर रहे है, सूर्यदेव के चार पटरानियां और १६००० रानियां हैं जिन के साथ सूर्यदेव भोगोपभोग भोग रहे हैं और चार हजार सामन्तिक देव उनकी चाकरी बजा रहे है और १६००० देव उनके Body guards है और उनके हाथी, घोड़े, गवैये, बजैये हैं, सभ्य समाज मे अपने आपको हंसी का पात्र बनाना है। अब वह जमाना लद गया जिसमे प्राकृतिक वस्तुओं को देव देव बतला कर साधारण जनता को भुलाया जाता था। जैसे जैसे विज्ञान के आविष्कारों द्वारा प्राकृतिक वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान होता गया, इन कल्पित देवों का असली रूप प्रकाश में आता गया।

वैज्ञानिक ज्योतिषियों ने बहु काल के अथक परिश्रम से

आज सौर मंडल की असली स्थिति जानने के लिये ऐसे ऐसे यन्त्र और नियम आविष्कृत किये हैं, जिनके द्वारा इन खगोल पिन्डों की असली स्थिति (Position) जानने में कोई त्रुटि नहीं रहती। जगह जगह प्रयोशालाओं में सैकड़ों वर्षों से दिन-रात लगातार अन्वेषण जारी हैं और रोजाना सूर्य-चन्द्र आदि के वहां हजारों फोटो लिये जा रहे हैं। यूरोप, अमेरिका आदि देशों में अनेक स्थानों में प्रयोगशालाएं हैं जिनमे ग्रीनविच, माऊंट विलशन, लिक, लावेल तथा जर्मनी की पांच-सात प्रयोगशालाएं नामी हैं जहां पर सौ सौ इञ्च के व्यास तक के बड़े टाल (Lens) के दूरदर्शक यंत्रों द्वारा अन्वेषण हो रहे हैं। इन अन्वेषणों के इतिहास और इनकी रिपोर्टों के व्योरेवार वर्णन का साहित्य (Literature) अगर कोई अध्ययन करे तो चकित हो जाना पड़ता है कि इन वैज्ञानिक ज्योतिषियों ने किस प्रकार गजब का परिश्रम किया है और सूक्ष्म ज्ञान द्वारा किस प्रकार संसार के सामने वे सत्यको प्रकाश में ला सके हैं।

पाठक वृन्द, सूर्य के बावत वर्तमान विज्ञान क्या बतला रहा है, इसका भी कुछ वर्णन आप के समक्ष रखूं जिससे आप को पता लग जाय कि उसका असली रूप क्या है। सूर्य एक ८६६७०० माइल के व्यास का गोलाकार ज्वलन्त पिन्ड है जो अत्यन्त गर्म और दबी हुई गैसों का बना हुआ है और हमारी पृथ्वी से १२५०००० गुणा बड़ा है। हमारी पृथ्वी से सूर्य ९३०-००००० मील की दूरी पर है और पृथ्वी की अपेक्षा ३३००००

गुणा भारी है। सूर्य पिन्ड पर गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी की अपेक्षा ३० गुणा ज्यादा है यानी यहां पर जो चीज एक मन वजन की होगी वह वहां पर ३० मन की होगी। प्रत्येक वस्तु का वजन वहां के गुरुत्वाकर्षण पर निर्भर करता है। सूर्य का तापक्रम ६००० centigrade degree का हैं और उसके प्रत्येक वर्ग सेन्टी मीटर (एक इञ्च के २ ४५ सेन्टीमीटर होते हैं) से करीब ५०००० candle power का तथा सर्व पिन्ड से प्रतिक्षण १५७५०००, ०००,०००,०००,०००,००० Candle power का प्रकाश निकल रहा है। सूर्य भी अपनी धुरी (Axis) पर घूमता है जिसको हमारे हिसाब से २७½ दिन एक दफा में लग जाते हैं। सूर्य के लपकती हुई ज्वालायें लाखों मील दूरी तक बाहर जाती है जो पूर्ण ग्रहण के समय दूरदर्शक यन्त्रों द्वारा स्पष्ट दिखाई देती है। जब पूर्ण ग्रहण होता है तब सूर्य का प्रभामण्डल (Corona) बीस-पचीस लाख मील तक बाहर चौगिर्द दिखाई पड़ता है। सूर्य का जब पूर्ण ग्रहण होता है तो हमारी पृथ्वी पर केवल १८५ मील के घेरे में दिखाई पड़ता है, इसके बाहर खन्डित दिखाई पड़ता है और ७½ मिनट से ज्यादा समय तक पूर्ण दिखाई नहीं पड़ता (चन्द्र की तरह सूर्य में भी कलंक यानी काले धब्बे (Spots) अनेक है जो सूर्य की मध्य रेखा के दोनों तरफ अत्यन्त उत्तर और दक्षिण भाग को छोड़ कर दिखाई पड़ते हैं। इन धब्बों (Spots) की संख्या नियम के अनुसार घटती बढ़ती रहती है और प्रत्येक ११½ वर्ष के पश्चात फिर पूर्व की

सी अवस्था दिखाई देने लगती है। इन धब्बों में से एक धब्बा सन् १८६२ में मापा गया था, जो ६२००० मील लम्बा और ६२००० मील चौड़ा पाया गया। सूर्य पिन्ड के मूल द्रव्य (Elements)जानने के लिये जब रश्मि-विश्लेषण-यन्त्र द्वारा देखा गया तो Plate पर नाना रंग की करीब १४।१५ हजार रेखाएँ पड़ीं, जिनसे यह अनुमान किया गया है कि वहा पर मूल द्रव्य (Elements) करीब ४६ हैं। सूर्य के बाबत बहुत अन्वेषण हुए हैं जिनका ब्यौरेवार वर्णन पढ़ने से सूर्य की असलियत स्पष्ट हो जाती है। क्षेत्र-मापक यन्त्र द्वारा खगोल-पिन्डों की दूरी आसानी से मापी जा सकती है। इस यन्त्र से सूर्य की त्रिकोण मिति यानी पीथागोरस सिस्टम द्वारा ऊंचाई की दूरी का निकालना आसान है। डायलर सिस्टम से प्रकाश अपने उद्गम स्थान से हमारी तरफ कितने वेग से आ रहा है, इसका पता आसानी से लग जाता है। रश्मि-विश्लेषण यन्त्र द्वारा खगोल-पिन्डों की रासायनिक बनावट, गति, दूरी, ठोस है या वाष्प-रूप, गैसों का तापक्रम, घनत्व, विद्युतीय और चुम्बकीय आकर्षण आदि अनेक बातों का पता लगाया जाता है। बोलोमीटर यन्त्र से ग्रहों की गरमी सरदी का अनुपात निकाल जाता है। विद्युत मापक यन्त्र से ग्रहों के विद्युत प्रवाह का पता लगाया जाता है। इन यन्त्रों द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म माप निकाला जा सकता है। उदाहरण के तौर पर यह विद्युत मापक यन्त्र पांच मील की दूरी पर जलती हुई एक मोमबत्ती

की गरमी को माप लेगा और $\frac{१}{१००००००}$ centigrade का ताप-क्रम बतला देगा। रश्मि-विश्लेषण यन्त्र नमक के एक ग्रेन टुकड़े के १८ क्रोड़ भाग में से एक भाग को अग्नि शिखा पर पड़ने से यह बता देगा कि इसमें क्या पड़ा है। इस प्रकार अनेक यन्त्र हैं जिनके द्वारा इन खगोल-पिन्डों की स्थिति, गति, वृत्त, दूरी, आकार, माप, वजन, तापक्रम, प्रकाश, विद्युत-प्रवाह, आकर्पण, घनत्व, द्रव्यमान, गुरुत्वाकर्पण आदि अनेक बातों का सही सही पता लग जाता है।

इस विज्ञान-युग में जब कि सैकड़ों बड़ी बड़ी प्रयोगशालाओं में रात-दिन इन खगोल वर्तिय पिन्डों को बड़े बड़े दूर-दर्शक यन्त्रों द्वारा प्रत्यक्ष देखा जा कर इनका ब्यौरेवार वर्णन हमारे सामने आ रहा है और बताये हुयें वर्णन का प्रत्येक अक्षर सत्य साबित हो रहा है तो यह कैसे माना जा सकता है कि ऊपर बताया हुआ सूर्य के बाबत का शास्त्रीय वर्णन सत्य है।

वर्तमान विज्ञान द्वारा बताये हुए इन खगोल-पिन्डों सम्बन्धी वर्णन को जो हजारों पृष्ठों मे भी नहीं लिखा जा सकता, इस छोटे से लेख में आप लोगों के समक्ष कैसे रखा जा सकता है। केवल यही अनुरोध किया जा सकता है कि यदि इस विपय की सत्यता जांचनी हो तो इस सम्बन्ध के साहित्य का अध्ययन करें।

इस लेख मे मैंने सूर्य के सम्बन्ध का ही कुछ वर्णन किया है। अब अगले लेखों में बाकी के सब ग्रहों, उपग्रहों, आदि

का वर्णन करके यह बतलाने की चेष्टा करूंगा कि जैन शास्त्रों में इस सम्बन्ध में क्या क्या कहा गया है और वर्तमान विज्ञान में क्या क्या ?

'तरुण जैन' सितम्बर सन् १९४१ ई०

खगोल वर्णन : ग्रहण विचार

गत मई से 'तरुण जैन' में मेरे लेख लगातार निकल रहे हैं। इन चार महीनों के लेखों मे जैन शास्त्रों में वर्णित कतिपय विषय, जो कि प्रत्यक्ष के मुकाविले में सत्य सावित नहीं हो रहे हैं, मैंने प्रश्नों के रूप मे समाधान के लिये जैन जगत के सामने रखे थे। मगर खेद है कि अभी तक समाधान के रूप में किसी का उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, कलकत्ता की तरफ से श्री छोगमलजी चोपड़ा के सम्पादन में निकलने वाली विवरण-पत्रिका के गत जुलाई के अंक में "जैन सिद्धांत और आधुनिक विज्ञान" शीर्षक एक लेख मैंने पढ़ा जिससे स्पष्टतया तो यह मालूम नहीं होता कि श्री चोपड़ाजी ने मेरे ही लेखों को लक्ष्य करके उक्त लेख लिखा है परन्तु अनुमान यही होता है कि सम्भवतः मेरे ही लेखों

पर लिखा गया है। श्री चोपड़ाजी लिखते हैं कि 'कुछ दिनों से देखने में आता है कि एक श्रेणी के लोग आधुनिक विज्ञान की जानी हुई बातों से जैन सिद्धान्तों की बातों का असामंजस्य दिखला कर जैन सिद्धान्तों से लोगों की आस्था हटाने का प्रयास कर रहे हैं और जनता को भ्रम में डालते हैं। यह लोग यहाँ तक कह डालते हैं कि या तो सिद्धान्तों की बातें सर्वज्ञों की नहीं हैं अथवा सर्वज्ञ थे ही नहीं।' यदि विवरण-पत्रिका का उक्त लेख मेरे ही लेखों को लक्ष्य करके लिखा गया हो तब तो मैं कहूंगा कि श्री चोपड़ाजी का कर्त्तव्य तो यह था कि जैन शास्त्रों की उन बातों का जो प्रत्यक्ष के सामने असत्य साबित हो रही हैं; किसी तरह सामंजस्य करके दिखलाते या उचित समाधान करते। मगर प्रश्नों की बातों का तो उन्होंने कहीं जिक्र तक नहीं किया, उल्टे प्रश्न करने वाले के प्रति लोगों में मिथ्या भ्रम फैलाने की ही चेष्टा की हैं। उनका यह कथन कि "यह लोग यहाँ तक कह डालते हैं कि या तो सिद्धान्तों की बातें सर्वज्ञों की नहीं हैं अथवा सर्वज्ञ कोई थे ही नहीं" लोगों में भ्रम फैला कर उत्तेजित करने के सिवाय और कुछ अर्थ ही नहीं रखता। 'विवरण-पत्रिका' के उस लेख में आगे चलकर श्री चोपड़ाजी ने एक पाश्चात्य विद्वान् Sir James Jeans के कुछ वाक्य उद्धृत कर विज्ञान की बातों को अनिश्चित बता कर विज्ञान पर से भी लोगों की आस्था हटाने का प्रयास किया है। श्री चोपड़ाजी को मालूम होना चाहिये

कि जैन शास्त्रों में—समभूमि बतला कर जिस सूर्य्य को उदय होते १८६०५३३७७ माईल से दिखाई देने वाला बतलाया है उसका सौ दो सौ माइल पर भी उदय होते क्षण दिखाई नहीं देना—इस पृथ्वी पर दो के बजाय एक ही सूर्य्य का होना और लगातार महीनों तक दिखाई देना—पृथ्वी पर १८ मूहूर्त (१४ घन्टे २४ मिनिट) से बड़े दिन और रातों को होना—छः महीने के अन्तर-काल से पहिले ही सूर्य्य ग्रहण का होना आदि. अनेकों बातें जैन शास्त्रों के विरुद्ध मगर प्रत्यक्ष में सत्य साबित होने वाली बातों के लिये विचार विज्ञान को कोसना अपने खुद को हास्यास्पद बनाना है। इन बातों के लिये विज्ञान को आड़ में लेने की आवश्यकता ही क्या है, यह तो प्रत्यक्ष के व्यवहारों में आने वाली बातें है जो सर्वज्ञता पर प्रकाश डाल रही हैं। खैर, श्री चोपड़ाजी से अब भी अनुरोध है कि वे कृपा करके मेरे लेखों के प्रश्नों का समाधान करके कृतार्थ करें।

गतांक में मैंने खगोल के विषय में सूर्य्य पर कुछ लिखा था। अब इस लेख में चन्द्रमा के विषय में हमारे जैन शास्त्र क्या कह रहे हैं और वर्तमान विज्ञान क्या कह रहा है, संक्षेप में इसी पर कुछ लिखूंगा। जैन शास्त्रों में जम्बूद्वीप के लिये सूर्य्य की तरह चन्द्रमा भी दो बतलाये हैं और उन्हें सूर्य्य की ही तरह भ्रमण करते हुए बताया है। प्रत्येक चन्द्र हमारी पृथ्वी से ८८० योजन यानी ३५२०००० माइल ऊपर है यानी

सूर्य्य से ३२०००० माइल ऊपर की तरफ। और इनका गोला-कार विमान है जिसकी लम्बाई ५६/६१ योजन यानी ३६७२ ८/६१ माइल और इतनी ही चौड़ाई तथा मोटाई २८/६१ यानी १८३६ ४/६१ माइल की है। इस विमान का नाम चन्द्रावतंसक विमान है और इसको १६००० देवता उठाये आकाश में भ्रमण कर रहे हैं। इन १६००० देवों का रूप इस प्रकार बताया है कि ४००० देव पूर्व दिशा में सिंह का रूप किये हुए, ४००० देव दक्षिण दिशा में हाथी का रूप किये हुए, ४००० देव पश्चिम दिशा में वृषभ का रूप किये हुए, और ४००० देव उत्तर दिशा में अश्व का रूप किये हुए हैं। जीवाभिगम सूत्र में इन हाथी घोड़े, सिंह और बैल वाले रूपों का विस्तार पूर्वक जो रोचक वर्णन आया है, वह देखते ही बनता है। चन्द्रदेव के चार अग्रमहिषियां (पटरानियां) है और प्रत्येक पटरानी के चार चार हजार देवियों का परिवार है। इस प्रकार चन्द्रदेव के भी १६००४ देवियाँ हुईं। चन्द्रदेव की चारों पटरानियों के नाम चन्द्रप्रभा, सुदर्शना (कहीं कहीं ज्योतिषप्रभा), अर्चिमाली और प्रभंकरा है। इन १६००४ देवियों के साथ नाना प्रकार के भोगोपभोग भोगते हुए चन्द्रदेव आकाश में विचरण कर रहे हैं। सूर्य्य और चन्द्रदेव के भोगोपभोग के सम्बन्ध में जीवाभिगम सूत्र में भगवान् से श्रीगौतम स्वामी ने एक प्रश्न पूछा है जो कुतूहल-वर्द्धक है। श्रीगौतम स्वामी पूछते हैं कि 'हे भगवान्' सूर्य्यदेव और चन्द्रदेव अपने सूर्य्यावतंसक और

चन्द्रावतंसक विमान की सुधर्मा सभा में क्या अपनी देवियों के साथ मैथुन सम्बन्धी भोग भोगने में समर्थ हैं, तो उत्तर में भगवान् कहते हैं कि 'हे गौतम, यह देव वहां मैथुन करने में समर्थ नहीं हैं कारण इन विमानों में बज्र-रत्न-मय गोल डब्बों में बहुत से जिनेश्वर देवों (जो मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं) की अस्थि, दाढ़ें वगैरह रखे हुए रहते हैं और वे अस्थि, दाढ़ें वगैरह देवों के लिये पूजनीय, अर्चनीय और सेवा करने योग्य हैं। इसलिये वहां पर और और तरह के भोगोपभोग भोग सकते हैं परन्तु मैथुन नहीं कर सकते। चन्द्रदेव के मुकुट में चन्द्रमण्डल का चिन्ह है और उनका वर्ण तप्त सुवर्ण जैसा दिव्य है। सूर्य्यदेव की तरह चन्द्रदेव के भी ४००० सामन्तिक देव (भृत्य) हैं और १६००० देव आत्मरक्षक (Body guards) सर्वदा सेवा में तत्पर रहते हैं। चंद्रदेव की वही सात अनिका हैं जैसी सूर्य्यदेव की हैं। चन्द्रदेव की सम्पत्ति का तो कहना ही क्या है, वे ज्योतिषी देवों में सब से अधिक धनाढ्य हैं। चन्द्रमा की कला कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष की तिथियों के अनुसार घटती बढ़ती रहती है। इसके लिये जैन शास्त्रों में एक राहु देव की कल्पना की है। चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र के बीसवें पाहुड़ में भगवान कहते हैं कि राहु एक देव है जो महा सम्पत्तिशाली, श्रेष्ठ वस्त्र और सुन्दर आभूषण धारण करने वाले हैं। इन राहु देव के नौ नाम इस प्रकार बताये हैं—सिंहाटक, जटिल, क्षुल्लक, खर, दद्दुर, मगर, मच्छ, कच्छ और कृष्ण सर्प। राहुदेव

के विमान के पांच वर्ण हैं—कृष्ण, नील, रक्त, पीत, शुक्ल। यह राहु देव दो प्रकार के हैं—एक ध्रुव राहु (जिसको नित्य राहु भी कहते हैं) और एक पर्व राहु। ध्रुव राहु का यह काम है कि प्रत्येक मास की प्रतिपदा से चन्द्र-विमान को एक एक कला करके १५ दिन तक ढकते रहना और अमावस्या को पूर्ण ढकते हुए शुक्लपक्ष के प्रतिपदा से वैसे ही एक एक कला १५ दिन तक वापस हटना, जिसकी वजह से चन्द्रमा की कलायें दिखाई देती हैं। पर्व राहु का काम सूर्य्य चन्द्र के ग्रहण (Eclipse) करने का है। राहु का विमान सूर्य्य-विमान तथा चन्द्र-विमान से चार अङ्गुल नीचा चलता है। ग्रहण के समय पर्व राहु का विमान जब सूर्य्य विमान और चन्द्र विमान के सामने आजाता है तब सूर्य्य-विमान या चन्द्र-विमान राहु के विमान की आड़ में आजाते है और ढक जाते हैं। जितने अंशों में विमान ढका जाता है; उतने ही अंशों का ग्रहण हो जाता है। ग्रहणों के बावत जैन शास्त्रों में लिखा है कि यदि चन्द्र-ग्रहण के पश्चात् दूसरा चन्द्र-ग्रहण हो तो जघन्य (कम से कम) ६ मास और उत्कृष्ट (ज्यादा से ज्यादा) ४२ मास के अन्तर-काल से होगा और सूर्य्य-ग्रहण के पश्चात सूर्य्य-ग्रहण हो तो जघन्य ६ मास और उत्कृष्ट ४८ वर्ष के अन्तर-काल से होगा। इस प्रकार चन्द्र और राहु के बावत की तथा ग्रहणों की जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर-काल की कल्पना को देख कर ऐसी कल्पना करने वाले सर्वज्ञों की सर्वज्ञता पर तरस

और आश्चर्य उत्पन्न होता है। ग्रहणों के जंघन्य और उत्कृष्ट अन्तर-काल की कल्पना किस आधार पर की है, यह तो करने वाले ही जानें; परन्तु यह कल्पना सम्पूर्णतया निराधार और असत्य सावित हो रही है। सर्वज्ञों ने कहा है कि सूर्य्य ग्रहण के पश्चात् दूसरा सूर्य्य ग्रहण कम से कम ६ मास पहिले नहीं होता; मगर इस कथन के विरुद्ध दो वाकये तो मैं पेश करता हूं, जो इस प्रकार हैं। विक्रमाब्द १६५६ की कार्तिक बदी अमावश्या को पहिला सूर्य्य ग्रहण होकर पांच ही महीने बाद चैत बदी अमावश्या को फिर दूसरा सूर्य्य ग्रहण हुआ जिसको लोगों ने अच्छी तरह अवलोकन किया है और इसवी सन् १६३१ का नाविक पञ्चांग भी The (Nautical Almanac) जो London से प्रकाशित होता है मेरे पास पड़ा है। उसमें तीन सूर्य्य ग्रहण और दो चन्द्र ग्रहण हुए हैं, जो इस प्रकार हैं—

पहिला सूर्य्य ग्रहण—तारीख १८ अप्रैल १६३१
दूसरा सूर्य्य ग्रहण—तारीख १२ सेप्टेम्बर १६३१
तीसरा सूर्य्य ग्रहण—तारीख ११ अक्टूबर १६३१
पहिला चन्द्र ग्रहण—तारीख २ अप्रैल १६३१
दूसरा चन्द्र ग्रहण—तारीख २६ सेप्टेम्बर १६३१

जैन शास्त्रों के ग्रहणों के कम से कम ६ मास अन्तर-काल बतलाने के खिलाफ बहुत ग्रहण हो चुके और होते रहेंगे। मैंने तो यहां केवल वही दिखाये हैं जिनका मेरे पास प्रमाण मौजूद

है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि The Nautical Almanac की सब प्रतियां (जब से इसका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है) मंगाई जाकर देखी जायँ तो अनेक ग्रहण ऐसे मिलेंगे जो ६ मास से पहले हुए हैं और जैन शास्त्रों के बताये हुए जघन्य अन्तर काल को असत्य साबित कर रहे हैं। अन्वेषणों से यह साबित हुआ है कि एक वर्ष में ५ सूर्य ग्रहण और दो चन्द्र ग्रहण हो सकते हैं और प्रत्येक १८ वर्ष २२८ दिन ६ घन्टे के पश्चात् सूर्य्य ग्रहण और चंद्र ग्रहण फिर पहिले के क्रम से होने लगते हैं। सर्वज्ञों ने कहा है कि सूर्य्य ग्रहण का उत्कृष्ट यानी ज्यादा से ज्यादा अन्तर-काल पड़े तो ४८ वर्ष का पड़ सकता है। वर्तमान विज्ञान के कथनानुसार प्रत्येक १८ वर्ष २२८ दिन ६ घन्टे पश्चात् सूर्य्य और चन्द्र ग्रहण फिर पहिले के क्रम से होने लगते है तो इन सर्वज्ञों का सूर्य्य ग्रहण के उत्कृष्ट अन्तर काल का ४८ वर्ष बतलाना सर्वथा असत्य साबित होता है। सर्वज्ञ और अनन्त ज्ञानी कहलाने वालों के वचन यदि इस प्रकार प्रत्यक्ष के सामने असत्य साबित हो रहे हैं तो शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता का मोह रखने वाले सज्जनों को चाहिये कि अपने विचारों को अच्छी तरह प्रमाण की कसौटी पर कस कर देखें अथवा सत्यता को साबित करके दिखावें। यह तो हुई ग्रहणों के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर-काल बतलाने के सम्बन्ध की बात। अब मैं चन्द्र और राहु के बाबत की शास्त्रीय कल्पना के सम्बन्ध में भी कुछ विचार उपस्थित करूं।

कृष्ण और शुक्ल पक्ष के लिये होने वाली चन्द्रमा की कलाओं के बाबत सर्वज्ञों ने ध्रुव राहु की कल्पना करके इस मसले को जैसे हल करने का मिथ्या प्रयास किया है, उस पर विचार करने से तो यह साबित हो रहा है कि व्यावहारिक ज्ञान भी शायद ही काम में लाया गया हो। चन्द्रदेव का विमान $\frac{५६}{६१}$ योजन यानी ३६७२$\frac{६}{६१}$ माइल लम्बा चौड़ा गोलाकार और ध्रुव राहु का विमान दो कोस यानी ४ माइल लम्बा चौड़ा बतलाया है। इस राहु ग्रह के विमान के माप के बाबत जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के ज्योतिषी चक्राधिकार में लिखा है "दोकोसेयगहाणं" यानी ग्रह का दो कोस का विमान है और जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति में लिखा है "ग्रह विमाणेवि अद्ध जोयणं" यानी ग्रह का विमान आधे योजन का है। इस प्रकार दोनों सूत्रों में भिन्न भिन्न कथन हैं जो सर्वज्ञता के नाते कतई नहीं होना चाहिये। कहीं कुछ और कहीं कुछ कह देना सर्वज्ञता नहीं बल्कि अल्पज्ञता का द्योतक है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के कथनानुसार राहु के विमान का व्यास यदि हम दो कोस यानी चार माइल का मान लें तो चंद्रमा के ३६७२$\frac{६}{६१}$ माइल के व्यास के विमान के मुकाबिले में (दोनों का गोलाकार होने की वजह से) अमावश्या की रात को राहु का बिचारा छोटा सा विमान चन्द्रमा के बहुत बड़े विमान को ढक तो क्या सकेगा (यानी नहीं ढक सकेगा) परन्तु चन्द्रमा के चमकते हुए प्रकाशवान विमान के बीच में

केवल एक छोटी सी काली टिकड़ी के मानिन्द दिखाई पड़ेगा। जीवाभिगम सूत्र के कथनानुसार यदि राहु के विमान को आधे योजन का यानी २००० माइल के व्यास का मान कर चन्द्रमा के ३६७२ ६६/६१ माइल के प्रकाशवान व्यास में २००० माइल के व्यास का राहु का काला चक्कर बीच में लगा कर देखें तो ३६७२ ६६/६१ माइल का चमकता हुआ प्रकाशवान घेरा २००० माइल के राहु के काले घेरे के चौतरफ चमकता हुआ बाकी रह जायगा। मगर हमे अमावश्या को जो दिखाई दे रहा है, वह सर्व विदित है यानी प्रकाश कतई दिखाई नहीं देता। राहु का यह विमान यदि चन्द्रमा से बहुत दूर हमारी पृथ्वी की तरफ बतला देते तो २००० माइल का काला गोल चक्कर ३६७२ माइल के प्रकाशवान गोल चक्कर के सामने आकर हमे चन्द्रमा को ढक कर दिखा देता मगर जीवाभिगम सूत्र में राहु का विमान चन्द्रमा के विमान से चार अङ्गुल नीचे चलता है, यह कह कर इसकी भी रात काट दी यानी गुञ्जाइश नहीं रहने दी। यह है सर्वज्ञता के व्यावहारिक ज्ञान का नमूना। चन्द्र विमान के १५ भाग किये हैं जिनमें से एक एक भाग प्रति दिन राहु का विमान कृष्णपक्ष में ढकता रहता है और शुक्लपक्ष में खोलता रहता है। राहु और चन्द्रमा इन दोनों के विमान गोल शकल के हैं। एक श्वेत चमकते हुए गोल चक्कर को दूसरे काले वैसे ही गोल चक्कर से (व्यास के १५ भाग बना कर एक एक पर) १५ दफा ढका जाय और उसी तरह वापिस

खोला जाय तो ढकते और खोलते समय जो जो शकलें चमकते हुए श्वेत चक्कर की बनेंगी, जैन शास्त्रों के बताये अनुसार ठीक वैसी शकलें चंद्रमा की दिखाई देनी चाहिये मगर ढकाई के समय शेष के दो तीन दिन और खुलाई के समय शुरुआत के दो तीन दिन (सो भी यथार्थ नही) के सिवाय बाकी के सब दिनों में वैसी शकलें किसी समय नहीं बनतीं। राहु के विमान की उस तरफ की गोलाई जिस तरफ चन्द्रमा के विमान के भाग को ढकती रहती है अपनी गोलाई को मिटाती हुई सीधी लम्बी बन कर विपरीत दिशा में हो जाती है *। यह है सर्वज्ञों की सूझ। चन्द्रमा के $\frac{५६}{६१}$ योजन के व्यास के चमकते हुए गोल चक्कर पर कलाएँ दिखलाने के लिये राहु के गोल काले विमान के व्यास की (दो कोस के विमान की कल्पना करके तो मूर्खों के सामने भी हास्यास्पद बनना है) आधे योजन की कल्पना करने में उसके होने वाले असर को विचारने में एक साधारण दिमाग जितना भी काम नहीं लिया गया।

कभी कभी कृष्ण पक्ष में या शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा के गोल पिन्ड का कुछ भाग धन्वाकार चमकता हुआ प्रकाशवान और शेष भाग अत्यन्त धुंधला दिखाई पड़ता है। चन्द्रमा के इस धुंधले भाग पर सूर्य्य का प्रकाश सीधा नहीं पड़ता परन्तु पृथ्वी

---

*यह प्रसंग चित्र देकर जितना स्पष्ट समझाया जा सकता है, उतना केवल भाषा से नहीं। मगर समझने के लिये भाषा को सरल बनाने का यथा साध्य प्रयत्न किया है। —लेखक।

से होकर पड़ता है जिससे चन्द्रमा पार्थिव प्रकाश (Earth shine) से चमकता है।

चन्द्रमा की कलाओं के बावत राहु की निराधार कल्पना के खन्डन में ऊपर कही हुई बातें तो है ही, मगर चन्द्रमा पर पार्थिव (Earth shine) से दिखाई देनेवाले इस धुधले भाग को जब हम देखते हैं तो सर्वज्ञों के बताये हुए राहु के गोल चक्कर की कल्पना काफूर हो जाती है यानी नहीं टिकती। यदि ध्रुव राहु (नित्य राहु) का कोई विमान गोल चक्कर का होता और चन्द्रमा को ढके हुए होता (कुछ) तो क्या हम चन्द्रमा के पिन्ड की सम्पूर्ण गोलाई की शकल देख पाते ? कदापि नहीं। जितने भाग पर राहु का गोल चक्कर आ जाता, चंद्रमा की गोल रेखा (Line) को दबा देता। धुंधला प्रकाश हम देख ही नहीं पाते। पाठकवृन्द, इस राहु के विमान की कल्पना ने तो सर्वज्ञों की सूझ पर अच्छी तरह प्रकाश डाल कर दिखा दिया कि व्यावहारिक ज्ञान शायद ही काम में लाया गया हो।

चंद्रमा के पिन्ड में जो काले धब्बे (Spots) दिखाई देते है, उनके बावत जैन शास्त्रों में कहीं कुछ लिखा नजर नहीं आता हालाकि यह धब्बे विना किसी यंत्र की सहायता के आखों से दिखाई देते है। इन धब्बों के बावत भी कोई मनगढ़न्त कल्पना अवश्य होनी चाहिये थी परन्तु इसके बावत किस कारण से मौन रहे, यह समझ में नही आता।

सम्पादकीय टिप्पणी

शास्त्रों की बातें !

इस शीर्षक की श्री बच्छराजजी सिंघी (सुजानगढ़) की लेखमाला 'तरुण' में मई के अंक से निकल रही है। उसके बारे में तरह तरह की चर्चा हुई है। कुछ-लोगों ने हमें यह लिखा है कि लेखक शास्त्रों पर आक्रमण कर रहा है, इसलिये इस तरह की लेखमाला को 'तरुण' में स्थान नहीं दिया जाना चाहिये। कुछ लोगों ने यह भी लिखा है कि भूगोल-खगोल का विषय हमारे जीवन के निर्माण और शोधन से बहुत ताल्लुक नहीं रखता, इसलिये इसको लेकर व्यर्थ ही ऊहापोह क्यों किया जाय ? इन आलोचकों ने, हमारी समझ में, लेखक का असली उद्देश्य समझने में गलती की है। लेखक का ध्येय शास्त्रों पर आक्रमण करने का नहीं—यद्यपि साधारण तौर से वैसा खयाल होता है—वरन् उस मनोवृत्ति पर आक्रमण करने का है जो किसी भी बात को शास्त्रों से समर्थन मिले बिना स्वीकार नहीं कर सकती तथा शास्त्रों की बातों की मान्यता और पालन में समय का सापेक्ष्य स्वीकार नहीं करती। हमारा खयाल यह है कि आदमी जिस समय जो बात कहता है, उस समय की उस की दृष्टि से तो वह सत्य ही होती है, लेकिन दूसरे मौके पर उस दृष्टि में परिवर्तन हो जाने के कारण वह असत्य हो जा सकती है। यह परिवर्तन

किसी भी कारण से हो सकता है—चाहे ज्ञान की वृद्धि से या ज्ञान की कमी से। पहली दृष्टि से हमें शास्त्रों की सत्यता स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं, यानी हम यह मान सकते हैं कि जिस शास्त्र-रचयिता ने भूगोल-खगोल सम्बन्धी जो बातें लिखी हैं, वे उसकी उस समय की दृष्टि के अनुसार सत्य थीं। पर अब कोई यदि यह कहे कि उसमें सार्वकालिक और सार्वभौमिक सत्य कहा हुआ है, तो हम उसे बुद्धि और ज्ञान की जड़ता तथा अंधश्रद्धा के सिवाय और कुछ नहीं मानेंगे। हम तो सवाल यह पूछते हैं कि आज हम अपने जीवन में भौगोलिक विषय में किस आधार पर चलते हैं? यदि शास्त्रों में बताई हुई दृष्टि से हमारा आज काम नहीं चलता, तो वाजिब यही है कि हम अपनी दृष्टि में परिवर्तन करें, न कि जीवन में दूसरी बात पर चलते हुए भी केवल शास्त्र के अक्षर मानने की जिद कर अपने आप को हास्यास्पद बनावें। शास्त्र मनुष्य के ज्ञान के विकास के लिये लिखे गये थे, न कि उस पर बन्धन डालने के लिये।

कुछ लोगों की और भी एक अजीब दलील इस सम्बन्ध मे मालूम हुई है। वे कहते हैं कि जिस आधुनिक विज्ञान का सहारा लेकर शास्त्रों की बातों का असामंजस्य दिखलानेका प्रयत्न किया जा रहा है, वह स्वयं भी अपूर्ण और गति-शील है। इस तथ्य के समर्थन में एक सज्जन ने सर जेम्स जीन्स जैसे विश्व-विश्रुत विज्ञान-वेत्ता के लेख के कुछ अंश उद्धृत किये हैं। इन पंक्तियोंको उद्धृत करते समय लेखक शायद यह भूल गये कि

उनकी बात ठीक इसलिये नहीं है कि सर जेम्स जो कहते हैं, वह उनके शास्त्र नहीं कहते। सर जेम्स के शब्दों में तो एक विज्ञान वेत्ता की प्रणाली का पूरा प्रतिपादन है। सच्चा वैज्ञानिक किसी वस्तु को अन्तिम नहीं मानता, इसलिये उसकी शोध जारी रहती है। विज्ञान विज्ञान ही इसलिये है कि उसकी ज्ञान की भूख मिटी नहीं है। शास्त्रों में आए हुए वर्णनों को सर्वज्ञ के वचन बता कर उससे रत्ती भर भी इधर-उधर विचार करने में ही जिन्हें अपनी धर्म-साधना खंडित हुई लगती है, वे अपनी ओर से अपनी बातों के समर्थन के लिये पेश किये हुए सर जेम्स जीन्स के इस वाक्य को फिर पढ़ें और उस पर गहराईसे विचार करें—"जो कुछ कहा गया है और जितने निर्णय विचारार्थ पेश किये गये हैं, वे सब स्पष्टतया अनुमानजनित और अनिश्चयात्मक हैं।" इन शब्दों में सच्चे वैज्ञानिक की दृष्टि है। अगर सब कुछ कहने के बाद शास्त्र भी ऐसी ही बात कहते हों तो सर्वज्ञ को बीच में डाल कर विवाद करने की जरूरत नहीं और वे ऐसा नहीं कहते हों, तो उनमें कम से कम वैज्ञानिक दृष्टि तो नहीं माननी चाहिये। इसलिये, श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला के शब्दों में मैं कहूंगा "शास्त्रों की मर्यादा को समझ कर अगर हम उनका अध्ययन करें तो वे हमारे जीवन में सहायक हो सकते हैं। नहीं तो वे जीवन पर भार रूप हो जाते हैं और फिर न केवल कबीर जैसों को ही, वरन् ज्ञानेश्वर सरीखों को भी उनकी अल्पता बतलानी पड़ती है।"

खगोल वर्णन : चन्द्रमा

चंद्रमा के विषय में जैन शास्त्रों की जो बातें ऊपर कही गई हैं, वे सब एक ही चंद्रदेव के बाबत की हैं। पहले बताया जा चुका है कि हमारे जम्बू द्वीप में दो चंद्र है और अढ़ाई द्वीप तक, जहा तक कि मनुष्यों की आबादी का सम्बन्ध है, १३२ चंद्र हैं। इसके बाद असंख्यात द्वीप समुद्रों के असंख्य ही चंद्र हैं और सब के सब स्थिर हैं यानी परिभ्रमण नहीं करते।

नीचे लिखी तालिका से यह पता लगेगा कि अढ़ाई द्वीप तक भ्रमण करने वाले कितने चंद्रमा हैं और कितना उनका परिवार है। एक चंद्रमा के परिवार में २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६९७५ कोड़ाकोड़ (यानी ६६९७५ कोड़ को ६६९७५ कोड़ से गुना करने से जो संख्या प्राप्त हो) तारे हैं।

द्वीप-समुद्रों के नाम	चन्द्र	नक्षत्र	ग्रह	तारे
जम्बू द्वीप	२	५६	१७६	१३३९५० कोड़ाकोड़
लवण. समुद्र	४	११२	३५२	२६७९०० —"—
धातकी खण्ड द्वीप	१२	३३६	१०५६	८०३७०० —"—
कालोदधि समुद्र	४२	११७६	३६९६	२८१२९५० —"—
पुष्करार्ध द्वीप	७२	२०१६	६३३६	४८२२२०० —"—
जोड़	१३२	३६९६	११६१६	८८४०७०० कोड़ाकोड़

जैन शास्त्रों में प्रत्येक चंद्र और सूर्य को ज्योतिषी देवों का इन्द्र (राजा) बतलाया है और प्रत्येक चंद्र और सूर्य नामक इन्द्र के २८ नक्षत्र ८८ ग्रह और ६६६७५ क्रोड़ाक्रोड़ (४४६१५०-६२५०००००००००००००० तारों का परिवार है। जम्बूद्वीप जिसको एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा गोलाकार समतल भूभाग बतलाया है, उसमें दो चंद्र और दो सूर्य्य मय अपने अपने उपर्युक्त परिवार के भ्रमण कर रहे हैं। इन सब के विमानों का क्षेत्रमान जम्बूद्वीप के लक्ष योजन के क्षेत्रमान से बहुत अधिक होता है, अतः इसमें यह कैसे समा सकते हैं—इस के लिये एक जैन ग्रंथकार ने शंका उत्पन्न की और फिर वहीं पर चित्त को संतोष देने के लिए समाधान यह किया है कि 'तत्वं केवलीगम्यं' यानी सर्वज्ञ ही जाने।

जैन शास्त्रों में पांच प्रकार के संवत्सर बतलाये हैं। नक्षत्र संवत्सर, युग संवत्सर, प्रमाण संवत्सर, लक्षण संवत्सर और शनैश्चर संवत्सर। युग संवत्सर के ५ भेद किये है—१ चंद्र, २ चंद्र, ३ अभिवर्धन, ४ चंद्र, ५ अभिवर्धन। इनमें का पहिला चंद्र संवत्सर १२ मास का, दूसरा चंद्र संवत्सर १२ मास का, तीसरा अभिवर्धन संवत्सर १३ मास का, चौथा चंद्र संवत्सर १२ मास का, पांचवा अभिवर्धन संवत्सर १३ मास का है। इस प्रकार एक युग के पांच संवत्सर ६२ महीनों के होते हैं। यहां पर अभिवर्धन अधिक मासके संवत्सरका नाम हैं। ऊपर बतलाये हुए हिसाब से पांच वर्ष (एक युग) में दो अधिक मास हुए इस

प्रकार मानने से ६५ वर्षों में ३८ अधिक मास हुये मगर ९५ वर्षों के वर्त्तमान पञ्चाङ्गों के अधिक मास देखने से ३५ ही अधिक मास पाये जायेंगे कारण अधिक मास होने का यह नियम है कि १६ वर्षों में ७ अधिकमास होते हैं। जैन शास्त्रों के और वर्त्तमान भारतीय ज्योतिष गणना के हिसाव में सिर्फ ९५ वर्षों में ३ अधिक मास का अन्तर पड़ता है। अगर जैन शास्त्रों के अनुसार कई शताब्दियों तक अधिक मास का वरताव किया जाय तो नतीजा यह होगा कि वैसाख-जेठ के महीने में सख्त सर्दी और पौष-माघ में सख्त गरमी की ऋतु का भी अवसर आ जायगा। यह है सर्वज्ञों की गणित के असर का नमूना।

वर्तमान विज्ञान के अन्वेषणों से चन्द्रमा की वावत वहुत वातें विस्तार से जानी गई है जिन को इस छोटे से लेख में लिखना असम्भव सा है। मगर थोड़ी सी वातंय हां वतलाने की कोशिश करूंगा। चन्द्रमा गेन्द की तरह एक गोलाकार पिन्ड है जिसका व्यास २१६० माइल से १४६ गज कम का है। सूर्य्य के चारों तरफ घूमने वाले पिन्डों को ग्रह कहते हैं। हमारी पृथ्वी, मंगल, वुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, युरेनिश, नेपच्युन, प्लुटो आदि ग्रह हैं जो सूर्य्य के चौगिर्द घूमते रहते हैं। इन ग्रहों के चौगिर्द घूमने वाले पिन्डों को इनके उपग्रह कहते हैं। चन्द्रमा हमारी पृथ्वी का उपग्रह है और पृथ्वी के चौगिर्द दीर्घ वृत्त में घूमता है। इसी लिये कभी छोटा और कभी वड़ा दिखाई पड़ता है। चन्द्रमा पृथ्वी से २२१६१० माइल की दूरी पर है

मगर यह दूरी वृत्त के अनुसार कुछ कम ज्यादा होती रहती है। इस वृत्त पर एक दफा घूमने में चन्द्रमा को २७ दिन ७ घन्टे ४३ मिनट और ११½ सेकिन्ड लगते हैं। खगोल वर्ती पिन्डों में चन्द्रमा हम से निकटतम है। चन्द्रमा स्वयं प्रकाशवान पिन्ड नहीं है, पृथ्वी की भांति यह भी सूर्य्य से प्रकाश पाता है। सूर्य्य की किरणें चन्द्रमा पर पड़ती है, फिर शीशे की भांति उस पर से वापिस आकर पृथ्वी पर पड़ती हैं जिससे स्निग्ध मनोहर चाँदनी छिटक जाती है। चन्द्रमा घूमते घूमते जिस वक्त पृथ्वी और सूर्य्य के बीच में आता है, तब हम उसे देख नहीं सकते क्योंकि जो भाग सूर्य्य के सामने हैं वह हम से छिपा रहता है और यही अमावश्या है। जिस वक्त चन्द्रमा और सूर्य्य के बीच में पृथ्वी आ जाती है तो चन्द्रमा दिखाई पड़ता है। हम सदैव चन्द्रमा का आधे से कुछ अधिक भाग यानी ५९% भाग देख पाते हैं। चन्द्रमा पृथ्वी की तरह अपने अक्ष पर भी घूमता है और पृथ्वी की परिक्रमा भी करता है। यह दोनों घुमाव करीब एक मास में समाप्त होते हैं चन्द्रमा के पृथ्वी के चारो और घूमने के कारण ही ग्रहण होता है। चन्द्रमा जब पृथ्वी और सूर्य्य के बीच में आ जाता है तो सूर्य्य ग्रहण होता है और जब चन्द्रमा और सूर्य्य के बीच में पृथ्वी आ जाती है तो चन्द्र ग्रहण हो जाता है। चन्द्र ग्रहण सब जगह एक सा दिखाई देता है, कहीं कम और कहीं अधिक नहीं; मगर सूर्य्य ग्रहण सब जगह दिखाई नहीं देता कारण जिन देश वालों की दृष्टि के सामने

चन्द्रमा आकर सूर्य्य को ढ़कता है, वे ही सूर्य्य ग्रहण देख सकते हैं। उनके सिवाय और देश वालों को पूरा सूर्य्य दिखाई देता है। सूर्य्य ग्रहण के समय दूरदर्शक यंत्र से देखने से चन्द्रमा सूर्य्य बिम्ब पर से खिसकता हुआ स्पष्ट दिखाई पड़ता है। सूर्य्य ग्रहण मे बिम्ब के पश्चिम दिशा से स्पर्श और पूर्व दिशा से मोक्ष होता है। सूर्य्य ग्रहण सर्वदा अमावश्या और चन्द्र ग्रहण सर्वदा पूर्णिमा को होता है। चन्द्रमा पृथ्वी के चारों तरफ घूमता है और पृथ्वी सूर्य्य के चारों तरफ घूमती है। ऐसी दशा में प्रति मास ग्रहण होना चाहिये मगर चन्द्रमा के आकाश पथ का धरा-तल पृथ्वी के आकाश पथ के धरातल से भिन्न है और वह पृथ्वी के धरातल से सवा पांच डिगरी का कोण (Angle) बनाता है। इसलिये प्रति मास ग्रहण नहीं हो पाता। ग्रहण तब ही होता है जब चन्द्रमा पृथ्वी के आकाश पथ के धरातल में आ जाता है जहां इन दोनों के आकाश पथ एक दूसरे से मिलते हैं। चन्द्रमा के पिन्ड पर जो धब्बे Spots दिखाई देते हैं, वे पहाड़ हैं, जिनमें अधिकांश ज्वालामुखी पहाड़ हैं परन्तु अब इन ज्वालामुखी पहाड़ों में अग्नि नहीं निकलती; केवल आकार मात्र रह गये हैं। इन पहाड़ों के बीच मे तराईयां और सैकड़ों कोस लम्बे मैदान पड़े हैं। इनके अतिरिक्त कहीं कहीं सैकड़ों कोस लम्बी और तीन चार सौ गज गहरी तथा कोस से भी अधिक चौड़ी दरारें दिखाई देती हैं। चन्द्रमा पर जल और वायु दोनों का अभाव सा है, इसीलिये वहा पर हमारी पृथ्वी की भांति

वृक्ष, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि का होना सम्भव नहीं। चन्द्रमा पर हवा न होने के कारण वहाँ शब्द भी सुनाई नहीं पड़ सकता चंद्रमा पर वायु मण्डल न होने के कारण जिस तरफ सूर्य्य का प्रकाश पड़ता है, वहां पर अत्यन्त गरमी और छाया की तरफ अत्यन्त सरदी पड़ती है।

चंद्रमा पर गुरुत्वाकर्षण बहुत ही कम है। चंद्रमा के बाबत की विज्ञान द्वारा जानी हुई बातें बहुत अधिक हैं। इस छोटे से लेख में कहाँ तक लिखी जायँ। केवल थोड़ी सी बातें लिखकर संतोष करना पड़ा है।

चंद्रमा खगोल वर्ती पिन्डों में हमारे सब से निकट है। इस-लिये वर्तमान विज्ञान के अन्वेषणों से इसके बाबत जो जो बातें जानी गई हैं, वे बहुत सही सही और स्पष्ट है। सही सही बाते जाने हुए ऐसे पिन्ड के बाबत वैल, हाथी, घोड़े के रूपों द्वारा आकाश में उठाये फिरने आदि नाना तरह की अर्थहीन कल्पना करके सर्वज्ञता का परिचय देना कहां तक सत्य है, यह तो विचार शील पाठकों के खुद के समझने का विषय है; मगर ग्रहणों के अन्तर-काल और नित्य, पूर्ण राहु की कल्पना द्वारा बताये हुए प्रसंगों के असत्य साबित होने के लिये हम दावे के साथ कह सकते हैं कि इन सर्वज्ञ वचनों को सत्य साबित करना एक विचारशील मनुष्यके लिये तो असम्भव है। अब अगले लेख में मैं यह बताऊँगा कि मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि आदि के विषय में हमारा जैन शास्त्र क्या क्या कहता है और वर्तमान विज्ञान के अन्वेषण क्या हैं ?

'तरुण जैन' नवम्बर सन् १९४१ ई०

खगोल वर्णन : अन्य ग्रह

गत लेखों में आपने देखा ही है कि जैन शास्त्रों में कही हुई एक आध नहीं बल्कि अनेक बातें प्रत्यक्ष और वर्तमान विज्ञान के अन्वेषणों से बताये हुए वर्णन के सामने असत्य प्रमाणित हो रही हैं। पिछले लेखों में मैंने कहा है कि जैन शास्त्रों में लिखी बहुत सी बातें असत्य असम्भव और अस्वाभाविक प्रतीत होती हैं। अभी तक मैंने केवल थोड़े से उन्हीं प्रसंगों पर लिखने का प्रयास किया है जो प्रत्यक्ष में असत्य प्रमाणित हो रहे हैं। यदि देखा जाय तो खगोल-भूगोल के विषय की जैन शास्त्रों की सारी कल्पनाएँ सर्वथा कल्पित मालूम होती हैं। वास्तव में उस जमाने में न तो यंत्रों का आविष्कार ही हुआ था और न विज्ञान के नाना तरह के नियमों और गणित का विकास हुआ था। ऐसी दशा में कल्पना के सिवाय और चारा ही क्या था ; मगर सर्वज्ञता के दावे में ऐसी निराधार कल्पनाओं का होना शोभा की बात नहीं। पिछले लेखों में यह दिखाया जा चुका है कि जैन शास्त्रों में सूर्य्य और चंद्रमा को ज्योतिषी देवों के इन्द्र मान कर प्रत्येक इन्द्र के २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६९७५ क्रोड़ाक्रोड़ तारों का परिवार बताया है। इन २८ नक्षत्रों का सूर्य और चंद्रमा के साथ योग, गति, समय कुलोपकुल आदि नाना तरह

के सम्बन्ध का सूर्य्यप्रज्ञप्ति' 'चंद्रप्रज्ञप्ति' आदि कुछ सूत्र ग्रंथों में काफी वर्णन है, मगर जहां तक मेरा अनुभव है वर्तमान भारतीय ज्योतिष के वर्णन और आंकड़ों का मुकाबिला किया जाय तो बहुत सी इन सूत्रों की बातें असत्य प्रमाणित हो जायेंगी। अवकाश के अनुसार इन के विषय में भी खोज शोध करके असत्य साबित होने वाली बातों पर कभी आगामी अङ्कों में लिखूगा। प्रस्तुत लेख में मुझे केवल ग्रहों के विषय में कुछ लिखना है। ग्रह उसी आकाशीय पिण्ड को कहते हैं जो सूर्य्यके चौगिर्द घूमता है और उपग्रह उस पिण्ड को कहते है जो सूर्य्य की तरह अपनी धुरी पर भले ही घूमता हो मगर किसी दूसरे पिण्ड के चौगिर्द नहीं घूमता। जैन शास्त्रों में ग्रह नक्षत्र तारे आदि की इस प्रकार की परिभाषा अथवा इस प्रकार का कोई भेद नहीं बतलाया है। उपग्रह का तो जैन शास्त्रों में कहीं नाम भी नज़र नहीं आता, कारण दूर-दर्शक यंत्रों के अभाव में ग्रहों के चौगिर्द घूमने वाले पिण्ड उन्हें कैसे दिखाई पड़े और बिना दिखाई पड़े नाम दें भी कैसे? जैन शास्त्रों में ८८ ग्रह बतलाये हैं जो इस प्रकार हैं।

१ अङ्गारक (मंगल) २ विआलक, ३ लोहिताक्ष, ४ शनैश्चर, ५ आधुनिक, ६ प्राधुनिक, ७ कण, ८ कणक, ९ कणकणक, १० कण वितानक, ११ कण संतानिक, १२ सोम, १३ सहित, १४ अश्वासन, १५ कार्योपग, १६ कच्छुरक, १७ अज करक, १८ दुंदभक, १९ शंख, २० शंखनाभ, २१ शंख वर्णभ, २२ कंश,

२३ कंशनाभ, २४ कंश वर्णभ, २५ नील, २६ नीलाभास, २७ रुप, २८ रुपावभास, २६ भस्म, ३० भस्मराशीं, ३१ तिल, ३२ तिल पुष्पवर्ण, ३३ दक, ३४ दक वर्ण, ३५ काय, ३६ वंध्य, ३७ इन्द्राग्नि ३८ धूमकेतु, ३६ हरि, ४० पिंगलक, ४१ वुध, ४२ शुक्र, ४३ वृह-स्पति, ४४ राहु, ४५ अगस्तिक, ४६ माणवक, ४७ कामस्पर्श, ४८ धूहक, ४६ प्रमुख, ५० विकट, ५१ विसंधि कल्प, ५२ प्रकल्प, ५३ जटाल, ५४ अरुण, ५५ अगिल, ५६ काल, ५७ महाकाल, ५८ स्वस्तिक, ५६ सौवस्तिक, ६० वर्द्धमानक, ६१ प्रलम्ब, ६२ नित्य लोक, ६३ नित्योद्योत, ६४ स्वयंप्रभ, ३५ अवभास, ६६ श्रेयस्कर, ६७ क्षेमंकर, ६८ आभंकर, ६६ प्रभंकर, ७० अरजा. ७१ विरजा, ७२ अशोक, ७३ वितशोक, ७४ विमल, ७५ वितप्त, ७६ विवत्स, ७७ विशाल, ७८ शाल, ७६ सुवृत्त, ८० अनि वृत्ति, ८१ एक जटि, ८२ द्विजटि, ८३ कर, ८४ करिक, ८५ राजा, ८६ अर्गल, ८७ पुष्पकेतु, और ८८ भावकेतु।

वर्तमान भारतीय ज्योतिष में सूर्य्य, चंद्र, मंगल, वुध, वृह-स्पति, शुक्र शनि, राहु और केतु, यह ग्रह माने हैं। यह देखने में आता है कि सनातन धर्म ग्रंथों में किसी वस्तु की संख्या यदि १० हजार वताई है तो वड़प्पन जताने के लिये जैन शास्त्रों में उसी को वढ़ाकर ५०-६० हजार वतलाने का प्रयास किया है। इस प्रकार संख्याओं को वढ़ा वढ़ा कर वताने की प्रतिस्पर्धा (competition) वृत्ति अनेक स्थलों में देखने मे आती है जिसका विशेष वर्णन किसी अन्य लेख में करूंगा। ८८ ग्रहों

की इस नामावली पर भी ध्यान पूर्वक विचार करने से यही अनुमान होता है कि केवल ग्रहों की संख्या अधिक दिखाने की नियत से इन ग्रहों की संख्या ८८ की गई है अन्यथा नामकरण का क्रम, "कण, कणक, कणकणक, कणवितांण, कण सतांनिक, शंख, शंखनाभ, शंखवर्णाभ, कंश, कंशनाभ, कंश वर्णाभ," आदि की तरह घड़ा हुआ सा प्रतीत नहीं होता। ८८ ग्रहों की इस नामावली में मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु नाम भी आ गये हैं। केवल मंगल, वुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु की समभूमि से ऊँचाई को छोड़ कर सब ग्रहों का दूसरा दूसरा वर्णन जैन शास्त्रों में सब एकसा है जो इस प्रकार है। सूर्य्य और चंद्रमा की तरह इन ग्रहों के विमानों को भी, प्रत्येक के विमानों को ८००० देव उठाये आकाश में भ्रमण कर रहे हैं जिनमें २००० देव पूर्व दिशा में सिंह का रूप किये हुए, २००० देव दक्षिण दिशा में हाथी का रूप किये हुए, २००० देव पश्चिम दिशा में बृषभ का रूप किये हुए, २००० देव उत्तर दिशा में अश्व का रूप किये हुए हैं। इन ग्रह देवों के भी प्रत्येक के वही चार चार अग्रमहीषियां (पटरानियां) हैं और वैसी ही पटरानियों के परिवार की देवियां हैं जैसा सूर्य्य चंद्र के हैं। चार चार हजार सामानिक (भृत्य) देव सोलह सोलह हजार आत्म रक्षक (Body guard) देव और सात सात अनिका और अन्य स्व विमान वासी देव देवियाँ सपरिवार सब सेवा में हाजिर हैं। सब के मस्तक पर स्व स्व नामांकित मुकुट है, सब का

(कुछ को छोड़कर) तप्त वर्ण जैसा दिव्य वर्ण हैं। इन ग्रहों के विमानों की लम्बाई चौड़ाई के बाबत राहु के विमान का नमूना तो आप गत लेख में देख ही चुके हैं कि जीवाभिगम सूत्र क्या कह रहा है और जम्बूद्वीप पन्नत्ति क्या कह रहा है। जीवाभिगम सूत्र ग्रहों के गोलाकार विमानों की लम्बाई चौड़ाई आधा योजन की और मोटाई एक कोस की बता रहा है। यह है ग्रहों के बाबत का कुछ वर्णन। नक्षत्र और तारों के लिये भी वही चार अग्रमहिषियां (पटरानियां) और उनके परिवार की देवियां और हाथी, घोड़े आदि के रूप में उठाये आकाश में भ्रमण करने वाले देवताओं आदि का अर्थहीन वर्णन उसी प्रकार है जैसा सूर्य्य चंद्र और ग्रहों का है। आकाश में उड़ाये फिरने वाले हाथी घोड़े रूप वाले देवों की संख्या में कुछ कमी कर दी है। नक्षत्रों के प्रत्येक के विमान को ४००० देव उठाये फिरते हैं जो चारों दिशाओं में हाथी, घोड़े, सिंह, बैल के रूप में एक एक हजार से तकसीम कर दिये है और तारों के प्रत्येक के विमान २००० देव उठाये फिरते है जो चारों दिशा में ५०० हाथी, ५०० घोड़े, ५०० सिंह और ५०० बैल के रूप में हैं। पाठक वृन्द ! इन सिंह, बैल और हाथी घोड़े के रूप में विमानों को उठाये फिरने वाले देवों के बाबत आप यह न खयाल कर लें कि बिचारे रिक्शा गाड़ी चलाने वालों की तरह यह देव भी अपमान के भाजन हो रहे होंगे, कदापि नहीं। शास्त्रों में लिखा है कि विमान तो सब अधर भ्रमण कर ही रहे हैं, इनको उठाये फिरने

वाले यह देव तो स्वेच्छा से अपने आपको अन्य देवों-के सामने इन्द्र और बड़े देवों के सेवक कहला कर बड़प्पन और सम्मान पाने की लालसा से विमानों को उठाये फिरते हैं; और इसी में सुख अनुभव कर रहे हैं। आश्चर्य है, शास्त्रों में इन हाथी घोड़े आदि रूप में निरन्तर भ्रमण करने वाले देवों के विषय में विश्राम के लिये बदलाई कराने आदि आदि का कुछ भी प्रबंध नहीं बताया। बिचारे रात दिन एक क्षण भी बिना विश्राम इतनी लम्बी लम्बी आयुष्य (जघन्य ⅛ पल्योपम) किस प्रकार व्यतीत करते होंगे। जैन शास्त्रों में इन ज्योतिषी देवों के विषय की कई बातें समन्वय रूप में लिखी हुई हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—ज्योतिषी देवों की गति की शीघ्रता की तुलना के विषय में श्री गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर में भगवान फरमाते है कि चन्द्रमा से सूर्य की गति शीघ्र, सूर्य से ग्रहों की गति शीघ्र, ग्रहों से नक्षत्रों की गति शीघ्र और नक्षत्रों से तारों की गति शीघ्र है। सब से मंद गति चन्द्रमा की और सब से शीघ्र गति तारों की है। ज्योतिषी देवों की सम्पत्ति (Financial position) के विषय में प्रश्न के उत्तर में भगवान् फरमाते है कि तारों से अधिक सम्पत्ति वाले नक्षत्र, नक्षत्रों से अधिक सम्पत्ति वाले ग्रह, ग्रहों से अधिक सम्पत्ति वाला सूर्य और सूर्य से अधिक सम्पति वाला चन्द्रमा है। सब से अल्प सम्पत्ति वाले तारे और सबसे अधिक सम्पत्ति वाला चन्द्रमा है।

ज्योतिषी देवों की संख्या के प्रश्न के उत्तर में भगवान

फरमाते हैं जितने सूर्य हैं उतने ही चन्द्रमा हैं, चन्द्रमा से नक्षत्र संख्यात गुण अधिक, नक्षत्रों से ग्रह संख्यात गुण अधिक और ग्रहों से तारे संख्यात गुण अधिक हैं। इस प्रकार के अनेक प्रश्न हैं। जैन शास्त्रों में कुछ ग्रहों की समभूमि से ऊँचाई के बाबत जो विशेष वर्णन आता है वह इस प्रकार है।

बुध समभूमि से ८८८ योजन यानी ३५५२००० माइल।
शुक्र समभूमि से ८९१ योजन यानी ३५६४००० माइल।
बृहस्पति समभूमि से ८९४ योजन यानी ३५७६००० माइल।
मंगल समभूमि से ८९७ योजन यानी ३५८८००० माइल।
शनि समभूमि से ९०० योजन यानी ३६००००० माइल।

राहु को चंद्रमा के विमान से चार अंगुल नीचा यानी ८८० योजन (३५२०००० मील) से चार अङ्गुल नीचा बतलाया है। यह हुआ जैन शास्त्रों में ग्रहों के विषय का कुछ वर्णन। अब मैं इन ग्रहों के विषय में वर्त्तमान विज्ञान क्या कह रहा है कुछ वही लिखूंगा। सूर्य के चौगिर्द घूमने वाले ग्रहों का अब-तक जो पता लगा है उसमें से कुछ इस प्रकार है। सूर्य के सब से निकट घूमने वाला बुध है इसके पश्चात् एक के पश्चात दूसरे के क्रम से शुक्र, हमारी पृथ्वी, मंगल, अनेक छोटे छोटे अवान्तर ग्रह, बृहस्पति, शनि युरेनस (प्रजापति), नेपच्यून (वरुण), प्लूटो (कुबेर) हैं। इन सब ग्रहों को अपनी अपनी कक्षा में सूर्य्य के चौगिर्द घूमने मे कितने कितने दिन लगते हैं वह इस प्रकार है। बुध को ८८ दिन, शुक्र को २२५ दिन, पृथ्वी

को ३६५¼ दिन, मंगल को ६८७ दिन, बृहस्पति को ४३३२ दिन, शनि को १०७५६ दिन, युरेनस को ३०६८७ दिन, नेपच्यून को ६०१२७ दिन, प्लूटो को ८६६४० दिन। हमारी पृथ्वी से सूर्य्य चन्द्र और ग्रह कितने मील की दूरी पर है वह इस प्रकार है। चन्द्रमा २२१६१० मील, शुक्र २३७०१००० मील, मंगल ३३६१-६००० मील, बुध ४८०२०००० मील, सूर्य्य ६२६६५००० मील, युरेनश १६०६१८३००० मील, नेपच्यून २६७४३७५००० मील,। सब ग्रह सूर्य्य के चौगिर्द दीर्घवृत (अण्डाकार वृत) में घुमते हैं इसलिये इन की दूरी घुमाव के अनुसार महत्तम और न्यून-तम होतीर हती है।

सब ग्रह अपनी अपनी धुरी पर घूमते हैं। एक घुमाव में किस को कितना समय लगता है, वह इस प्रकार है—हमारी पृथ्वी को २४ घंटे और कुछ मिनट, मंगल को २४ घंटे ४१ मिनट, वृहस्पति को १० घंटे, शनि को १०¼ घंटे, शुक्र को २३ घंटे २१ मिनट। बुध सूर्य्य के अति निकट है, इसकी एक ही बाजू दिखाई देती है इसलिये पता नहीं लगता। युरेनस, नेप-च्यून, प्लूटो हमसे अत्यन्त दूरी पर हैं। अतः १०० इञ्च वाले दूरदर्शकों से इनका पृष्ठ स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ता, इसलिये अभी तक पता नहीं है, परन्तु आगामी वर्षों में जब २०० इञ्च के व्यास का दूर-दर्शक यंत्र तैयार हो जायागा तो आसानी से पता लगने की सम्भावना है। इन ग्रहोंके जो उप-ग्रह दिखाई दिये हैं वे इस प्रकार हैं—हमारी पृथ्वी का एक उपग्रह

चंद्रमा है (जिस का वर्णन पिछले लेख में किया जा चुका है) वृहस्पति के ६ उपग्रह हैं, शनिके १० हैं, मंगल के २ हैं, युरेनस के ४ हैं, और नेपच्यून का एक उपग्रह है। इन ग्रहों का कुछ अलहदा अलहदा वर्णन मैं अगले लेख में करूंगा।

'तरुण जैन' दिसम्बर सन् १६४१ ई०

बुध

बुध गेन्द की तरह एक गोल पिण्ड है, जो सब ग्रहों से सूर्य्य के ज्यादा निकट है। बुध सूर्य्य से लगभग ३६२१०००० मील की दूरी पर है, जिसका व्यास ३०३० मील का है। सूर्य का प्रकाश और ताप, दोनों ही बुध पर अति प्रचण्ड रूप से पड़ते हैं, मगर सानिध्य के कारण हमे दिखाई देने में सुगमता नहीं होती। दिन में सूर्य के तेज के सामने उसका पृष्ठ छिपा रहता है। प्रातः-काल सूर्योदय के पहले और सायंकाल सूर्यास्त के पश्चात्, केवल थोड़ी सी देर तक देखा जा सकता है। हमारी पृथ्वी पर से बुध पर भी चन्द्रमा की तरह कलाएँ घटती वढ़ती दिखाई पड़ती हैं। धबु को हम उसी समय देख सकते हैं, जब वह और सूर्य लम्ब दिशाओं में हों। बुध का अक्ष-भ्रमण और परिक्रमण काल बराबर है, इसलिये इसका एक ही पृष्ठ सदा सूर्य के सन्मुख रहता

है। सामने के पृष्ठ पर निरन्तर भयानक गरमी और दूसरी तरफ भयानक शीत तथा एक तरफ निरन्तर दिन और दूसरी तरफ रात रहती है। बुध पर कुछ धब्बे और चिन्ह दीख पड़ते हैं, जिससे अनुमान होता हैं कि चन्द्रमा की तरह वहां भी पहाड़ और दरारें हैं। हमारी पृथ्वी से बुध पर गुरुत्वाकर्षण बहुत कम है। पृथ्वी पर जो वस्तु १½ मन की होगी, बुध पर ½ मन की ही रह जायगी। सूर्य की परिक्रमा करने में बुध को ८८ दिन लगते हैं, इसलिये बुध पर का वर्ष भी ८८ दिन का होता है। जिस प्रकार सूर्य और पृथ्वी के बीच में चन्द्रमा के आ जाने से सूर्य-ग्रहण होता है, उसी प्रकार सूर्य और पृथ्वी के बीच बुध के आ जाने से भी रवि-बुध संक्रमण (Transit) होता है। बुध का बिम्ब इतना छोटा है कि इससे सूर्य-ग्रहण तो नहीं होता मगर सूर्य के पृष्ठ पर बुध छोटा सा काला गोल चक्कर प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार का रवि-बुध संक्रमण सन् १९२७ की १० मई को और सन् १९४० की १२ नवम्बर को हो चुका है, जिसको हमारे यहां के भी कुछ व्यक्तियों ने देखा है। गणित से जो रवि-बुध गमन कुछ आगामी काल के जाने हुए हैं, वे इस प्रकार हैं–सन् १९५३ की १३ नवम्बर, सन् १९६० की ६ नवम्बर, सन् १९७० की ९ मई, सन् १९७३ की ९ नवम्बर, सन् १९८६ की १२ नवम्बर।

शुक्र

सूर्य से बुध के पश्चात् दूसरी कक्षा शुक्र की है। शुक्र सब ग्रहों से हमारी पृथ्वी के ज्यादा निकट है। पृथ्वी से शुक्र २३७०१०००

मील की दूरी पर है, मगर जो कठिनाइयां हमें बुध को देखने में पड़ती हैं वे ही इसको देखने में भी पड़ती हैं, इसलिये इसके बावत में भी बहुत थोड़ी बातें जानी जा सकती हैं। शुक्र का मार्ग भी पृथ्वी के क्रांति-वृत्त के भीतर है, और पृथ्वी की अपेक्षा सूय के निकट है, अतः शुक्र भी केवल प्रातःकाल और सायंकाल ही देखा जा सकता है। शुक्र का व्यास ७६०० मील का है और अपने अक्ष पर घूमने मे इसको २२५-दिन लगते हैं। सूर्य की परिक्रमा करते हुए भी शुक्र को २२५ दिन लगते हैं, इसलिये शुक्र पर हमारे २२५ दिनों में एक दिन-रात होता होगा। शुक्र की कक्षा पृथ्वी की कक्षा के अन्दर है, इसलिये बुध की तरह शुक्र में भी हमें कलाएँ घटती बढ़ती दिखाई देती हैं। यानी चंद्रमा की तरह शुक्र भी रूप बदलता हुआ दिखाई पड़ता है। शुक्र पर वायु और जल का अभाव नहीं है, अतः वहां पर जीवधारियों का होना सम्भव है। शुक्र का पृष्ठ सदैव अत्यन्त घने बादलों से ढ़का रहता है; मगर कभी कभी वहां के कुछ पहाड़ दिखाई पड़ते हैं। शुक्र का कोई उपग्रह नहीं है। शुक्र की कक्षा पृथ्वी के क्रांतिवृत्त के अन्दर है, इसलिये शुक्र भी जब बुध की तरह सूर्य के सामने आ जाता है तो रवि-शुक्र संक्रमण (Transit) होता है। और बिम्ब छोटा होने के कारण, बुध की ही तरह सूर्य के पृष्ठ पर छोटा सा काला चक्कर प्रतीत होने लगता है। गत रवि-शुक्र संक्रमण सन् १८८२ मे हुआ था और आगामी काल मे कुछ इस प्रकार होंगे—सन् २००४ की

८ जून को, और सन् २०१२, २११२ तथा २१२५ में होगा। शुक्र जब पृथ्वी के निकट आ जाता है तो बड़ा और जब दूर चला जाता है तो छोटा दिखाई पड़ता है। जब शुक्र हमारी पृथ्वी के और सूर्य के बीच में आ जाता है तब लगभग २३/४ करोड़ मील की दूरी पर रहता है, मगर सूर्य से इसकी औसतन दूरी करीब ६७५००००० मील की है।

पृथ्वी

शुक्र के पश्चात् सूर्य से तीसरी कक्षा पृथ्वी की है। पृथ्वी भी ग्रह है, इसलिये ग्रहों के वर्णन के सिलसिले में इसका भी कुछ वर्णन करना उचित होगा। पृथ्वी का व्यास ७९२६१/२ मील और परिधि लगभग २४८५६ मील की है। पृथ्वी से सूर्य लगभग ९२९६५००० मील की दूरी पर है। यह तो कहा ही जा चुका है कि सब ग्रह सूर्य के चौगिर्द दीर्घ वृत्त में घूमते हैं, अतः घुमाव के अनुसार इनकी दूरी महत्तम और न्यूनतम होती रहती है। पृथ्वी की मुख्य दो प्रकार की गतियाँ हैं, अक्ष-भ्रमण और परिक्रमण। अक्ष-भ्रमण करते पृथ्वी को एक दफा में २४ घंटे लगते हैं और सूर्य की परिक्रमा करते ३६५३/४ दिन लगते हैं। पृथ्वी की कक्षा ५८४६००००० मील की हैं, जिसका पृथ्वी ६६६०० मील प्रति घंटे और १८१/२ मील प्रति सेकेण्ड की गति से परिक्रमण करती है। अक्ष-भ्रमण की गति एक मिनिट में १७१/५ मील की है। अक्ष-भ्रमण और परिक्रमण के अलावा पृथ्वी की १० सूक्ष्म गतियाँ और मानी गई हैं, जिनका विवेचन यहां स्थानाभाव से

नहीं किया जा सकता। पृथ्वी की अक्ष-रेखा भ्रमण-पथ से तिरछी स्थित है और ६६½ अंश (डिगरी) का कोण बनाती है। पृथ्वी की गतियों और इस तिरछेपन से ऋतुओं का परिवर्तन होता है। गर्मी और सर्दी के लिहाज से पृथ्वी को भिन्न २ पांच भागों में विभक्त किया गया हैं। जिनको पाँच कटिबन्ध (Zones) कहते हैं—जैसे उत्तरी शीत-कटिबन्ध, उत्तरी शीतोष्ण-कटिबन्ध, उष्ण-कटिबन्ध, दक्षिणी शीतोष्ण-कटिबन्ध, दक्षिणी शीत-कटि-बन्ध। पृथ्वी पर एक ही समय में कहींपर कड़ाके की गर्मी और कहीं पर कड़ाके की सर्दी, कहीं पर दिन बहुत बड़े और कहीं पर छोटे, कहीं पर लगातार महीनों बड़े दिन और कहीं पर लगातार महीनों बड़ी रातें—इस प्रकार होने का कारण केवल पृथ्वी का नारंगी की तरह गोल होना, अपने अक्ष पर ६६½ डिगरी से तिरछा होना और कई तरह की गतियों से गमन करना है। दिसम्बर के दिनों में भूमध्य-रेखा के उत्तरी भाग में कड़ी सर्दी पड़ती है तो दक्षिणी अमेरिका में कड़ी गर्मी; और भारत में सर्दी पड़ती है तो आस्ट्रेलिया में गर्मी। सूर्य के उत्तरा-यण होने पर पृथ्वी का उत्तरी भाग जब सूर्य के सामने रहता है तब उत्तरी ध्रुव में छः महीने की रात होती है। सर्दी के दिनों में भारत में रातें १३½ घन्टे की और दिन १०½ घन्टे का होता है तब इङ्गलैंड में रात १८ घन्टे की और दिन ६ घन्टे का होता है। पृथ्वी की गति का प्रभाव चंद्रमा के प्रकाश पर भी पड़ता है। सर्दी के दिनों में गर्मी की ऋतु की अपेक्षा चन्द्रमा

में प्रकाश अधिक होता है। सर्दी के दिनों में सूर्य पृथ्वी से निकट और दक्षिणायण होता हैं और गर्मी में पृथ्वी से दूर और उत्तरायण होता है। पृथ्वी का अक्ष ठीक ध्रुवतारे की तरफ रहता है। पृथ्वी का घनत्व २६०००००००००० घन मील है और वजन १६००० शंख मन है। पृथ्वी पर वायु-मण्डल का दबाव औसतन ७½ सेर प्रति वर्ग इञ्च का है और वायुमण्डल रजकण से भरा हुआ हैं, इसी से आकाश नीला दिखाई पड़ता है। पृथ्वी की परिक्षेपण शक्ति ०.४५ है यानि सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर जितना आता है, उसका १०० में ४५ भाग बिखर कर वापस लौट जाता है। वर्त्तमान विज्ञान के अन्वेपणों द्वारा पहाड़ों नदियों, समुद्रों, ज्वालामुखी पहाड़ों, आदि के बनने, होने, मिटने का क्रम वर्षा, हवा, तूफान, भूकम्प आदि के होने, बनने, बहने आदि के सम्बन्ध की बातें सही सही और विस्तार पूर्वक इतनी अधिक जानी जा चुकी हैं कि उनको यदि सबको लिखा जाय तो हजारो पृष्ठों का एक वहुत वड़ा ग्रन्थ वन जाय। इस छोटे से लेख में कहां तक लिखा जाय? यदि किसी को इस विषय को जानने की इच्छा हो तो उसे इस विषय के साहित्य को ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिये।

मंगल

मंगल के विषय का वृत्तान्त हम को सौर-चक्र के पिन्डों में पृथ्वी के सिवाय सब से अधिक ज्ञात है। एक तो इसको देखने में वे कठिनाइयां नहीं हैं जो बुध और शुक्र के विषय में उपस्थित

होती हैं, दूसरे यह हमारे बहुत निकट है। मङ्गल का मार्ग पृथ्वी के क्रांतिवृत्त के बाहर है, इसलिये षडभान्तर (opposition) के समय हम उसे वैसा ही देख सकते हैं, जैसा पूर्णिमा के दिन चन्द्र को। सूर्य से दूर होने के कारण हमें उसको रात भर आकाश में देखने का मौका मिलता है। मंगल का व्यास ४२१५ मील का है, और पृथ्वी से करीव ३३६१६००० मील की दूरी पर है। मंगल सूर्य से लगभग १४१०००००० मील की दूरी पर है और सूर्य की परिक्रमा करते उसे ६८७ दिन लगते हैं। मंगल का वर्ण रक्त वर्ण है और लगभग १५ वें वर्ष उसका रंग विशेष उद्दीप्त दीख पड़ता है, कारण उस समय वह पृथ्वी के समीप आ जाता है। मंगल को अपना अक्ष-भ्रमण करने में २४ घन्टे ३७ मिनिट:२२ सेकेन्ड लगते हैं। पृथ्वी की भांति मंगल का अक्ष भी क्रांतिवृत्त के साथ लगभग ६६ डिगरी का कोण बनाता है, इसलिये मंगल पर भी ऋतु-परिवर्तन होता रहता है। पृथ्वी की तरह मंगल पर भी वायु-मन्डल बहुत दूर दूर तक फैला हुआ है परन्तु बहुत पतला है। वहां के वायुमण्डल में carbonic acid gas की मात्रा अधिक प्रतीत होती है। जिस प्रकार पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के पास वर्फ जमी हुई है, उसी प्रकार मंगल के ध्रुवों पर भी वर्फ दिखाई पड़ती है। मंगल के अधिकांश पृष्ठ पर लाल और हरे रंग के मैदान तथा हजारों मील लम्बी नहरें (canals) दिखाई पड़ती हैं। अनुमान किया जाता है कि लाल रंग के मैदान वहां की मिट्टी लाल होने

से होंगे और हरे मैदान वहां की खेती-बाड़ी और जंगलों के होंगे। नहरों की संख्या बढ़ती जा रही है जिससे अनुमान होता है कि वहां के बाशिन्दे खेती-कास्त के लिये नहरें बढ़ा रहे होंगे। इस वक्त करीब ३५० नहरें भिन्न भिन्न स्थानों पर वहाँ देखी जा रही हैं। इन नहरों में कई नहरें चौड़ाई में करीब बीस बीस मील और लम्बाई में करीब ३५०० मील तक की दिखाई पड़ रही हैं, और बहुत सीधी और नियमानुकूल बनी हुई प्रतीत होती हैं, जिससे मालूम होता है कि वहां के बसनेवाले मनुष्य कलाकौशल में अति प्रवीण हैं। यह भी देखा गया है कि सर्दी के समय जब ध्रुवों के पास बर्फ जमने लगती है तो यह नहरें पतली पड़ जाती हैं और गर्मी के दिनों में बर्फ गलने पर मोटी और चौड़ी होने लगती हैं। जहां पर कई नहरें मिलती हैं वहां शाद्वल (Oases) दिखाई पड़ते हैं। इन नहरों के विषय में वैज्ञानिकों का कुछ मत-भेद भी है। मंगल के दो उपग्रह हैं जो मंगल के चौगिर्द परिक्रमा करते रहते हैं। एक का व्यास लगभग ३५ मील का है तथा मंगल से करीब ५८०० मील की औसत दूरी पर है और ७½ घन्टे में मंगल की एक परिक्रमा कर लेता है। दूसरे का व्यास करीब १० मील का है तथा मंगल से १५६०० मील दूर है और ३०⅓ घन्टे में मंगल की एक परिक्रमा करता है। मंगल पर गुरूत्वाकर्षण पृथ्वी की अपेक्षा कम है। जो वस्तु पृथ्वी पर १½ मन की होगी वह मंगल पर ½ मन से कुछ ऊपर होगी। मंगल का घनत्व भी

पृथ्वी की अपेक्षा करीव आधे से कुछ अधिक है और आकर्षण केवल एक तिहाई है।

मंगल के पश्चात और बृहस्पति के पहिले एक कक्षा आवान्तर ग्रहों की है। आवान्तर ग्रह सैकड़ों की तादाद में हैं जो करीव पन्द्रह सौ तो देखे जा चुके हैं। आवान्तर ग्रहों का व्यास नीचे में ५ मील और ऊपर में ५०० मील तक का देखने में आता है। सूर्य से आवान्तर ग्रहों की दूरी लगभग २४ कोटि मील की है और परिक्रमा करते लगभग २२०० दिन लगते होंगे। आवान्तर ग्रहों के लिये माप और समय औसत दरजे से दिया गया है।

बृहस्पति

बृहस्पति का पिण्ड ग्रहों में सब से वड़ा है, जिसका व्यास ६२१६४ मील का है। दूरदर्शक यंत्रों से बृहस्पति का आकार अण्डे की तरह का दिखाई पड़ता है। पृथ्वी से बृहस्पति ३५६–८१६००० मील की दूरी पर है और सूर्य ४८३२८८००० मील की दूरी पर। सूर्य की परिक्रमा करने में वृहस्पति को ४३३२ दिन लगते हैं। बृहस्पति को एक अक्ष-भ्रमण करने में १० घन्टे लगते हैं। वृहस्पति के पृष्ठ पर कुछ समानान्तर रेखाएँ दीख पड़ती हैं। एक ज्योतिषी ने कहा है कि बृहस्पति की मध्यरेखा के दोनों तरफ हजारों कोस चौड़ी लाल रंग के बादलों की मेखलाएँ फैली हुई हैं, जिनमें मध्य-मेखला कभी तीव्र नींबू के रङ्ग की या कभी लाल रंग की रहती है; और बीच बीच में श्वेत रंग के

गोल गुब्बारे की भांति फूले हुए पिण्ड दीख पड़ते हैं, जो घने बादलों के हैं। बृहस्पति के दोनों ध्रुवों की तरफ लम्बे चौड़े छायायुक्त मैदान पड़े हैं, जिनका रंग गहरा आसमानी दीख पड़ता है। बृहस्पति के पृष्ठ पर सन् १८७८ में एक विशाल रक्त-वर्ण बिन्दु देखा गया जिसका क्षेत्रफल करीब १० कोटि मील का प्रतीत हुआ; फिर सन् १८८३ में वह विन्दु लुप्त हो गया, मगर कुछ वर्षों बाद फिर दिखाई पडने लगा, और अब भी दिख पड़ता है। ज्योतिषियों का अनुमान है कि यह बिन्दु बृहस्पति का ही शुद्ध पृष्ठ है, जो कभी कभी घने बादलों से ढक जाता है। बृह-स्पति पर बादल बहुत घने हैं, जिससे उसका पृष्ठ दिखाई पड़ने में बड़ी बाधा रहती है। बृहस्पति के ९ उपग्रह हैं, जिनका भिन्न भिन्न और विस्तृत वर्णन इस छोटे लेख में सम्भव नहीं है। बृहस्पति का पृष्ठ अभी तक वाष्पीय और अत्यन्त गर्म है, जिसको हमारी पृथ्वी की तरह जीवों की आबादी के योग्य बनने में करोड़ों वर्ष लगेंगे; वहां पर जीवधारियों का होना सम्भव नहीं है। बृहस्पति के कुछ उपग्रह उल्टी दिशा में भ्रमण करते हैं। बृहस्पति पर गुरुत्वाकर्षण पृथ्वीसे दुगुना है। जो वस्तु पृथ्वी पर डेढ़ मन की होगी, वह बृहस्पति पर तीन तन की हो जायगी। मगर घनत्व पृथ्वी की अपेक्षा बहुत कम है। पृथ्वी का घनत्व पानी की अपेक्षा ५½ गुणा भारी है मगर बृह-स्पति का १¼ गुणा ही भारी है।

शनैश्चर

बृहस्पति के पश्चात् सूर्य के गिर्द शनैश्चर की कक्षा है। शनैश्चर के गोल पिण्ड का व्यास ७६५०० मील का है। यह कहा जा चुका है कि सब ग्रहों के यह गोल पिण्ड सूर्य के चौगिर्द अण्डाकार वृत्त में घूमते हैं, जिसके कारण पृथ्वी और सूर्य से जो दूरी ग्रहों की है वह घुमाव के अनुसार महत्तम और न्यूनतम होती रहती है। कुछ वर्षों पहले शनैश्चर की महत्तम और न्यूनतम दूरी नापी गई थी, जो इस प्रकार है। पृथ्वी से महत्तम दूरी १०३०९१२००० मील, न्यूनतम दरी ७४२६४६००० मील और सूर्य से महत्तम दूरी ६३६३८८००० मील, और न्यूनतम दूरी ८३७१७०००० मील की है।

सूर्य की एक परिक्रमा में शनैश्चर को १०७५९ दिन, ५ घण्टे, १६ मिनिट लगते हैं। शनि के पिण्ड से अलग, मगर पिण्ड के चौतरफ एक पतला चपटा वलय (छल्ला) दिखाई पड़ता है। आकाश में यह एक अनोखा दृश्य है। वलय का का आन्तररिक व्यास १४७६७० मील का, और बाहर का व्यास १७१००० मील का है। दूरदर्शक यंत्रों से यह वलय, एक के बाद एक करके तीन दिखाई पड़ते हैं, और असंख्य पिण्डों के बने हुए प्रतीत होते हैं। यानी असंख्य उपग्रह इतने पास पास आ गये हैं, जो मिल कर वलय से दिखाई पड़ रहे हैं। शनि का पृष्ट भी घने बादलो से घिरा हुआ है। वहाँ का वायुमण्डल अत्यन्त घना प्रतीत होता है। शनि की हालत भी

लगभग बृहस्पति की सी ही है। शनि को अक्ष भ्रमण करने में १०½ घण्टे लगते हैं। शनि की गति बहुत धीमी है इसीलिये इसको शनैश्चर यानी धीरे धीरे चलने वाला कहते हैं। शनि के भी १० उपग्रह हैं, जिनमें अन्तिम उपग्रह बृहस्पति के कुछ उपग्रहों की तरह उलटी दिशा में भ्रमण करता है। शनि का भी ऊपरी पृष्ठ वाष्पीय और अत्यन्त गर्म है, अतः वहां पर भी यहां जैसे जीवधारियों का होना असम्भव है। अलबत्ता शनि और बृहस्पति के कुछ उपग्रहों की दशा ऐसी दिखाई पड़ती है कि उनमें जीवधारियों का होना बहुत सम्भव है। शनि और बृहस्पति की गति में एक विचित्रता देखी जा रही है। पहिले यह आकाश में पश्चिम से पूर्व को जाते दिखाई देते हैं, फिर कुछ चल कर रुक जाते हैं, और फिर पश्चिम की तरफ चलने लगते हैं; तथा फिर कुछ दिन पीछे पूर्व को लौट पड़ते हैं। हमारी पृथ्वी से शनि की आकर्षण शक्ति कुछ अधिक है, मगर घनत्व पृथ्वी की अपेक्षा बहुत हलका है।

यूरेनिस

शनि के पश्चात् सूर्य के गिर्द यूरेनिस की कक्षा है। इसका हाल प्राचीन ज्योतिषियों को तो मालूम ही नहीं था। सन् १७८१ की १३ मार्च को विलियम हर्सल ने इसको देखा और बताया। यूरेनिस को हमारी भाषा में हम प्रजापति भी कहते हैं। यूरेनिस का व्यास ३१००० मील का है, और पृथ्वी से १६०६१८३००० मील दूरी पर है। यूरेनिस १७७ कोटि मील की

दूरी से सूर्य की परिक्रमा करता है, जिसको एक परिक्रमामें ३०६-८७ दिन लगते हैं। यह ग्रह बहुत अधिक दूरी पर है, इसलिये वर्त्तमान दूर दर्शक यन्त्रों से इसका पृष्ठ स्पष्ट नहीं देखा जा सकता। जब २०० इञ्च के व्यास का दूरदर्शक यंत्र तैयार हो जायगा, तब विशेष बातें मालूम होंगी।

नेपच्यून

यूरेनिस के पश्चात् पेरिस के मि० गाल ने सन् १८४३ की २३ सितम्बर को एक ग्रह फिर देखा, जिसका नाम नेपच्यून (वरुण) रखा। नेपच्यून का व्यास करीब ३४००० मील का है, और पृथ्वी से २६७४३७५००० मील की दूरी पर है। नेपच्यून सूर्य से २७९०००००९० मील दूरी पर है, और सूर्य की परिक्रमा करने में इसको ६०१२७ दिन लगते हैं। यूरेनिस की तरह इसका भी विशेष हाल अभी तक जाना नहीं जा सका है।

नेपच्यून के पश्चात् सन् १९३० में एक ग्रह का फिर पता लगा, जिसका नाम प्लुटो (कुबेर) रखा गया है। इसका भी विशेष हाल अभी तक मालूम नहीं हो पाया है।

विचारशील पाठक वृन्द ! गत लेखों में जैन शास्त्रों के सर्वज्ञों की सर्वज्ञता आप देख ही चुके हैं कि पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा के सम्बन्ध का उनको कितना शूक्ष्म और अधिक ज्ञान था, और सर्वज्ञता की दिव्यदृष्टि में कितनी शक्ति थी। यदि हम अंधश्रद्धा से काम न लेकर विवेक, न्याय और तर्क से बात को निष्पक्ष भाव से विचारें तो जैनशास्त्रों में एक-आध नहीं, परन्तु हजारों

बातें ऐसी मिलेंगी, जो मेरे बताये हुए असत्य, असम्भव और अस्वाभाविक की कोटि में प्रयुक्त दृष्टिगोचर होंगी। प्रस्तुत लेख में भी आपने नोट किया होगा कि बुध और शुक्र में चंद्रमा की तरह होने वाली कलाएँ, तथा रवि-बुध और रवि-शुक्र के होने वाले संक्रमण और शनि के चौगिर्द अलग दिखाई देने वाले वलय (छल्ले) इन सर्वज्ञों की दिव्यदृष्टि से ओझल रह गये। सर्वज्ञों ने तो अपनी दिव्यदृष्टि में सब ग्रहों को हर तरह से एक समान देखा। इसीलिये तो वे समदृष्टि कहलाते हैं। सच है, गुड़ और खल के मूल्य में अंतर न देखना भी तो एक प्रकार का समदृष्टिपन है। इन लेखों में जो विवेचन किया गया है, उस पर विचार करने से बहुत सी बातें ऐसी हैं, जिनका जैनशास्त्रों के वर्णन से सामंजस्य नहीं होता। उनमें से कुछ की यहां फेहरिस्त दे देना मुनासिब होगा जिससे वे पाठकों की स्मृति में ताजा हो जायें।

१—जिस पृथ्वी पर हम आबाद हैं, उस पर प्रकाश देने वाले दो सूर्य बतलाना, जब कि एक ही सूर्य का होना प्रमाणित होता है।

२—पृथ्वी पर १८ मूहूर्त्त से बड़े दिन और रात का न होना बतलाना, जब कि २२।२३ मूहूर्त्त तक के रात-दिन तो जहाँ हम लोग रहते हैं, वहाँ हो रहे हैं, और तीन तीन छः छः महीनों के अन्यत्र होते देखे जा रहे हैं।

३—सूर्य-ग्रहण का जघन्य अन्तर-काल ६ महीने से कम का न

होने का बताना, जब कि एक ही वर्ष में ५ सूर्यग्रहण तक हो सकते हैं और एक महीने के अन्तर से भी हुए हैं।

४—सूर्य-ग्रहण का उत्कृष्ट अन्तर-काल ४८ वर्ष बताना, जब कि १८ वर्ष २२८ दिन ६ घन्टे पश्चात् ग्रहण पहिले के क्रम से होने लगते हैं।

५—कम्बत्सरों के हिसाब से ६५ वर्ष में ३ अधिक मास का अन्तर पड़ता हैं, जिससे कई शताब्दियाँ गुजरने से ऋतुओं का सब क्रम बिगड़ जाता है।

६—बुध और शुक्र में चन्द्रमा की तरह दिखाई देने वाली कलाओं का न बताना, जब कि वे साफ दिखाई दे रही हैं। यदि सर्वज्ञों के पास दूरदर्शक यंत्र होते तो वे भी अवश्य देख पाते।

७ रवि-बुध और रवि-शुक्र के होने वाले संक्रमणों का न बताना, जब कि यह भी साफ देखे जा रहे है। दूरदर्शक यन्त्र के अभाव ने सब गड़बड़ पैदा कर दी अन्यथा दूरदर्शक यन्त्र होते तो सर्वज्ञता की दिव्यदृष्टि उज्ज्वल हो जाती।

८—शनि के वलय (छल्ले) नहीं बताना, जब कि वे साफ दिखाई दे रहे हैं। यह भी दूरदर्शक यन्त्र के अभाव का प्रताप है।

९—पृथ्वी पर एक ही समय में कहीं पर सख्त गर्मी और कहीं पर सख्त सर्दी का होना, जब कि सर्वज्ञों ने ऋतुओं के अनुसार सर्व भूमि पर एक सा बर्ताव बताया है।

१०—पृथ्वी को समतल (Flat) बताना, जब कि पृथ्वी नारंगी की तरह एक गोल पिण्ड के सदृश्य है।

११—पृथ्वी को असंख्यात योजन लम्बी-चौड़ी बताना, जब कि पृथ्वी केवल २४८५६ मील की परिधि में स्थित है।

१२—इस पृथ्वी पर कल्पनातीत बड़े बड़े पर्वत, समुद्र, नद, नगर आदि बताना, जो आप गत लेखों में देख चुके हैं, जब कि हमारे सामने जो है, वह मौजूद है।

१३—सूर्य की गति १ मिनट में ४४२०८४ ३/४ मील की बताना, जब कि हमारे यहां के हिसाब से १७ १/५ मील की साबित होती है।

१४—सूर्य का उदय होते समय १८१०५३३७७ मील की दूरी से दृष्टिगोचर होते बताना, जब कि १००-२०० मील की दूरी से भी दिखाई नहीं पड़ता है।

१५—सूर्य पिण्ड का ४८/६१ योजन, यानी ३१४७ ३३/६१ मील का व्यास बतलाना, जब कि उसका व्यास ८६६००० मील का है।

१६—सूर्य को समभूमि से ३२००००० मील की ऊंचाई पर बताना, जब कि सूर्य हम से ९२९६५००० मील की दूरी पर है।

१७—चन्द्रमा को ३५२०००० मील की ऊँचाई पर बतलाना, जब कि चन्द्रमा केवल २२१६१० मील की दूरी पर ही है।

१८—चन्द्रमा के विमान को ५६/६१ योजन यानी ३६७२ ८/६१ मील के व्यास का, सूर्य से भी बड़ा बताना, जब कि चन्द्रमा सूर्य से अत्यन्त छोटा है, जो आप पूर्व लेखों में देख ही चुके हैं। सर्वज्ञों

ने शायद चन्द्रमा को अनन्त ज्ञान की दिव्यदृष्टि से न देख कर सादी आंखों से ही देखा होगा, जिससे चन्द्रमा का पूर्ण बिम्ब सूर्य से बड़ा दिखाई पड़ता है।

१९—सूर्य विमान से चन्द्र विमान को ३२०००० (तीन लाख बीस हजार) मील ऊपर बताना, जब कि इन दोनों में करोड़ों मील का फासला है और चन्द्रमा नीचा भी है।

२०—सूर्य और चन्द्र ग्रहणों के लिये राहु के पिण्ड की कल्पना करना, जब कि राहु का कोई पिण्ड है ही नहीं।

२१—पर्व राहु के विमान को, सूर्य विमान और चन्द्र विमान से ४ अंगुल नीचा बताना और साथ ही सूर्य और चन्द्र के विमान के बीच ३२०००० मील का अन्तर बताना।

२२—नित्य राहु द्वारा चन्द्रमा की कलाओं की कल्पना बताना जिसका खण्डन आप पूर्व लेख में देख ही चुके हैं।

२३—ग्रहों के उपग्रहों का नाम तक न बताना।

२४—बुध, शुक्र, बृहस्पति,मंगल और शनि की ऊंचाई में तीन तीन योजन का फासला बताना जब कि बहुत अधिक अधिक मीलों की दूरी का अन्तर आप पूर्व लेख में देख ही चुके हैं।

२५—ग्रहों का अपनी अपनी कक्षा और अपने अपने अक्ष पर घूमने के बाबत कुछ नहीं कहना, जब कि अक्ष-भ्रमण साफ दिखाई पड़ता है।

२६—सब ग्रहों का व्यास एक समान बताना, जब कि बड़े बड़े अन्तर आप पूर्व लेख में देख ही चुके हैं।

'तरुण जैन' जनवरी सन् १९४४ ई०

इस लेख माला का उद्देश्य

'तरुण जैन' के गत मई से दिसम्बर, ४१ तक आठ महीनों के अंकों में लगातार "शास्त्रों की बाते!" शीर्षक मेरे लेख निकल चुके हैं जिनमें जैन शास्त्रों में बताई हुई खगोल-भूगोल सम्बन्धी कुछ बातों पर प्रकाश डालते हुए मैंने प्रश्नों के रूप में सत्यासत्य जानने का प्रयास किया है। इन लेखों के विषय में 'तरुण जैन' के सम्पादक महोदय के पास कुछ सज्जनों के पत्र आए जिनमें यह शिकायत थी कि लेखक जैन शास्त्रों पर आक्रमण कर रहा है। साथ ही यह अनुरोध भी था कि 'तरुण जैन' में ऐसे लेखों को स्थान नहीं मिलना चाहिये। गत सितम्बर के अङ्क की सम्पादकीय टिप्पणी में मेरे लेखों के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए सम्पादक महोदयों ने ऐसे सज्जनों को वहुत सुन्दर और यथार्थ उत्तर दे दिया है। मुझे इस विषय में कहने की कुछ आवश्यकता नहीं रही। गत लेखों में मैंने यह कहा है कि जैन शास्त्रों में भी अन्य शास्त्रों की तरह अनेक बातें ऐसी लिखी हुई नजर आ रही हैं जिन्हें हम असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव अनुभव कर रहे हैं। गत लेखों में असत्य प्रतीत होने वाली बातों की एक सूची मैंने पिछले दिसम्बर के अंक में दे दी है। जैन शास्त्रों के ज्ञाता और विद्वान लोगों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि उस सूची की प्रत्येक बात का वे सन्तोषजनक समाधान करें।

केवल जैन शास्त्रों की ही ऐसी बातों के विषय में इस प्रकार प्रश्न मैं क्यों कर रहा हूं, इसका जरा खुलासा कर दूं। क्या अन्य शास्त्रों में ऐसी बातें नहीं हैं? अवश्य हैं, और जैन शास्त्रों से कहीं अधिक हो सकती हैं; मगर समाज-हित के साधनों पर कुठाराघात करने वाले भावों के उत्पन्न होने की गुंजाइश जिस प्रकार जैन शास्त्रों से प्राप्त हुई है, वैसी सम्भवतः अन्य किन्हीं शास्त्रों से हुई नजर नहीं आती। अन्य किसी भी शास्त्र के आधार पर सामाजिक मनुष्य को यह उपदेश नहीं मिल रहा है कि शिक्षा-प्रचार करने मे पाप है—भूख-प्यास से तड़फ कर मरते मनुष्य को अन्न-पानी की सहायता करने में पाप है—दुःखी-गरीब, अनाथ, अपंग की सहायता और रक्षा करने मे पाप है—अस्वस्थ माता, पिता, पति आदि की सेवा-सुश्रूषा करने में पाप है—यानी समाजिक जीवन मे सहूलियतें एवं उन्नति करने वाले जितने भी सुकार्य हैं, सब पाप ही पाप हैं। सदगृहस्थ के यदि धर्म है तो केवल सामायिक, प्रतिक्रमण करने, व्रत-प्रत्याखान करने, उपवास-तपस्या करने और साधु-सन्तों की सेवा-भक्ति करने में है। इनके अलावा गृहस्थ चाहे समाज-हित के और परोपकारी कार्य स्वार्थ रहित होकर भी करे, सब एकान्त पाप और अधर्म है।* ऐसे उपदेशों का यह असर होना स्वाभाविक ही है कि बहुत लोगों की परोपकार

---

*चूंकि सारे जैन समाज की ऐसी विचार-धारा नहीं है इसलिये यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि लेखक की आलोचना समस्त जैन समाज के प्रति लागू नहीं हो सकती। हां, जैनियों में ऐसी मान्यता के लोग भी हैं, जिनके लिये लेखक का अभिप्राय सत्य मालूम पड़ता है।

—सम्पादक

की भावना लुप्त हो गई। मनुष्य स्वभाव से ही लोभी और स्वार्थी होता है। फिर उसको मिले ऐसे धर्मोपदेश जिनमें उसे धर्म-उपार्जन करने में स्वार्थ का किञ्चित भी त्याग करने की आवश्यकता नहीं। फलतः ऐसे उपदेशों का क्या असर हो सकता है, पाठक स्वयं विचार लें। सामाजिक प्राणी के लिये ऐसे उपदेशों के अक्षर अक्षर सत्य मान लेने के नतीजे पर विचार करके मेरे हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई कि सर्वज्ञों ने समाजहित के ऐसे परोपकारी कार्यों को क्या वास्तव में ही एकान्त पाप और अधर्म बताया है? जरा शास्त्रों के रहस्य को देखना तो चाहिये। इसी विचार से शास्त्रों का अवलोकन करना प्रारम्भ किया तो कई बातें ऐसी देखने में आईं जिन्हें सर्वज्ञ तो क्या पर अल्पज्ञ भी अपने मुँह से कहने में अपने आपको असत्य-भाषी महसूस करने लगेंगे। ऐसी बातों को देख कर यह विचार हुआ कि सर्वज्ञ कहलाने वालों के ऐसे असत्य वचन होने नहीं चाहिये; अतः परीक्षा के नाते इन शास्त्रों के ऐसे स्थलों को देखना चाहिये जिन्हें हम प्रत्यक्ष की कसौटी पर कस सकें। प्रत्यक्ष की कसौटी पर कसने के लिये भूगोल-खगोल और वे विषय जिनका गणित से खास सम्बन्ध है, मुझे सर्वथा उपयुक्त प्रतीत हुए। मैंने इन विषयों पर देख-भाल करना प्रारम्भ किया जिसका परिणाम इन लेखों के रूप में आपके समक्ष उपस्थित हो ही रहा है और होता रहेगा।

शास्त्रों की इस देखा-भाली में कई स्थल ऐसे देखने में आये जिनसे यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि प्रत्येक मजहब वालों ने एक दूसरे के प्रति साधारण जनता में द्वेष फैलाने का निकृष्ट प्रयास करने में भी संकोच नहीं किया है। सनातन धर्म के श्री भागवत महापुराण के पञ्चम स्कन्ध मे जैनधर्म के प्रति अनेक स्थलों में जहर उगला गया है और जैन शास्त्रों के कई सूत्र-ग्रन्थों में अनेक स्थलों में सनातन धर्म के प्रति जहर उगला गया है। साथ ही अपने अपने धर्म-ग्रन्थों के अक्षर अक्षर की सत्यता की दुहाई देने में किसी ने भी कमी नहीं रखी है। एक कहता है कि हमारे धर्म-ग्रंथ तो अपौरुषेय हैं यानी मनुष्य के रचे हुए ही नहीं है, खास ईश्वर के ही वचन हैं, तो दूसरा कहता है हमारे शास्त्रों में भगवान सर्वज्ञ सर्वदर्शी खुद के श्रीमुख से निकले हुए वचन हैं। बिचारी भोली जनता साहित्यिक शब्दाडम्बर की सुललित मादक धारा के बहाव मे पड़ कर इस अक्षर अक्षर सत्यता के भँवर में फंस जाती है और अपने हिताहित को भूल कर एक दूसरे (मजहब वालों) से द्वेष करने लगती है जिसका बुरा परिणाम हम सामाजिक क्षेत्र में पग पग पर देख रहे हैं। जैन शास्त्र नन्दी-सूत्र में सत्य सत्य शास्त्रों की नामावली सुन लेने के पश्चात् श्री गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया कि हे भगवान, मिथ्या शास्त्र कौन कौन से हैं तो श्री भगवान ने फरमाया कि हे गौतम, मिथ्या दृष्टि, अज्ञानी, स्वछन्द बुद्धि वाले मिथ्या

पुरुषों द्वारा रचे मिथ्या शास्त्र यह हैं—चार वेद छः अङ्ग (शिक्षा कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, छन्द, व्याकरण) सहित, पुराण, भागवत, रामायण, महाभारत, वैशेषिकादि दर्शन, पातञ्जल (योग दर्शन), कौटिल्य (अर्थ शास्त्र), बुद्ध वचन, व्याकरण, गणित आदि इस प्रकार मिथ्या शास्त्रों के अनेक नाम बतलाये है। इसी प्रकार अनुयोगद्वार-सूत्र, समवायाग-सूत्र में दूसरे के शास्त्रों को मिथ्याशास्त्र बतलाये है। विचारना यह है कि अन्यों के शास्त्रों को मिथ्या बताते हुए तो उनकी व्याकरण और गणित (जिनका मिथ्या और सत्य ध्या बतलाना, यह तो भाषा और गणना के केवल नियम बतलाने वाले ग्रंथ हैं) तक को मिथ्या बताने में सर्वज्ञों ने संकोच नहीं किया। और अपनी खुद की साधारण गणित करने में—सही सही बताने में भी अनेक स्थलों में असमर्थ रह गये ! इन शास्त्रों में अनेक स्थानों में गणित की गलतियाँ देखने में आ रही हैं। प्रत्येक जगह जहाँ जैन शास्त्रों में किसी वस्तु का आकार गोल बता कर उसका व्यास बताया है और फिर उस व्यास की परिधि बताई है, वे सब की सब परिधियाँ असत्य और गलत हैं। उदाहरण के तौर पर जम्बूद्वीप को गोलब ताकर उसका व्यास १००००० योजन और परिधि ३१६२२७ योजन ३ कोस १२८ धनुष्य १३½ अङ्गुल १ यव १ युक १ लिख ६ बालाग्र (बाल का अग्र भाग) ५ व्यवहारिये प्रमाणु की बताई है जो सर्वथा असत्य और गलत है। छोटी छोटी कक्षा के विद्यार्थी भी

जानते हैं कि १००००० योजन के व्यास के गोल चक्कर की परिधि ३१४१५९$\frac{५३}{१००}$ योजन होगी। स्थूल हिसाब से एक गोलाई के व्यास की परिधि $\frac{२२}{७}$ या ३$\frac{१}{७}$ गुना होती है और भारतीय उच्च गणित-ग्रंथ लीलावती के अनुसार सूक्ष्म परिधि ३·१४१६० और वर्तमान सूक्ष्म गणित (जहाँ तक कि मैंने देखा है) के अनुसार ३·१४१५९२६५ गुना होती है। यही गुर (Formula) विज्ञान और इञ्जिनियरिङ्ग मे काम मे लाया जाता है और इतना सही है कि परीक्षा में सम्पूर्ण सत्य उतरता है। जैन शास्त्रों में जम्बूद्वीप की गोलाई पूर्णिमा के गोल चन्द्र के सदृश्य बताकर एक लाख योजन के व्यास की परिधि बताने में सर्वज्ञों ने सूक्ष्मता का तो कमाल कर दिया है। युक (जूं), लिख, बालाग्र और व्यवहरिये प्रमाणुओं तक को घसीट लिया गया और योजनों की सत्यता में सारा ही घाटा ! जम्बूद्वीप की परिधि बताने में सूक्ष्म अन्तर को तो दरकिनार रखिये, यहाँ तो २०६८ योजन यानी ८२७२००० माइल का बहुत बड़ा अन्तर पड़ रहा है। लोक आकाश के घनफल बताने की असत्यता के बाबत 'तरुण' के गत अङ्क मे श्री मूलचन्दजी वैद (लाडनू) के लेख में देखा ही जा चुका है कि शास्त्रों में लोक आकाश का जो आकार बताया है उसके अनुसार इनके द्वारा बताया हुआ ३४३ का घनफल किसी प्रकार से भी प्रमाणित नहीं हो सकता *। पाठकवृन्द, यह है

---

*उक्त लेख 'लोक के कथित माप का परीक्षण' शीर्षक से इस पुस्तक के परिशिष्ट में छपा है।

गणित में अक्षर अक्षर सत्यता का नमूना। लोग अब इस बात को तो स्वीकार करने लग गये हैं कि दर असल ही खगोल-भूगोल की बातों के बाबत जैन शास्त्रों में जो वर्णन है, वह सत्य साबित नहीं होता; मगर और सब बातों की अक्षर अक्षर सत्यता पर अब भी उनका अंधविश्वास बना हुआ है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि या तो धर्मजीवी लोगों ने अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये जान बूझ कर लोगों को मुगालते (भ्रम) में डाल रखा है या उन्होंने खुद शास्त्रों के बचनों को कसौटी पर कसने का कष्ट नहीं उठाया। वरना जो गलतियाँ और असत्य बाते देखने में आ रही हैं, वे इनसे छिपी नहीं रहनी चाहिये थीं। भूगोल-खगोल के सम्बन्ध में लोगों के दिमाग में यह बात खामख्वा जमा दी गई है कि जो शास्त्र विच्छेद गये, उनमें इन सब बातों का सही सही वर्णन था। वर्तमान जैन सूत्रों में खगोल-भूगोल का कुछ भी वर्णन नहीं होता तो हम इस कथन को स्वीकार करके भी संतोष कर लेते; मगर शास्त्रों को बांचने वाले अच्छी तरह से जानते हैं कि इन विषयों पर सूत्रों में काफी लिखा हुआ है। सो भी अनेक स्थलों में पड़ी बृतियों के साथ अन्यों के कथनों को लहजे के साथ मिथ्या बताते और खण्डन करते हुए। अक्षर अक्षर सत्य मानने वालों की तरफ से शास्त्र विच्छेद गये का कहना तो चल ही नहीं सकता। अब तो जो लिखा हुआ है उसीको सत्य साबित कर दिखाना अपने कर्तव्य को पालन

करना और जिम्मेवारी से रिहा पाना है। खैर, खगोल-भूगोल के विषय पर विवेचन करना हम छोड़ ही दें तो भी तो अनेक बातें ऐसी है जो प्रत्यक्ष में असत्य साबित हो रही हैं। परिधियों के असत्य होने को आप प्रस्तुत लेख मे अच्छी तरह देख ही चुके है और इसी तरह अन्य बातों को भविष्य मे क्रमशः देखते रहेगे। सर्वज्ञों के वचनों में जहां रञ्च मात्र भी असत्य होने की गुंजाइश नहीं, अक्षर अक्षर पर सत्यता की मोहर लगाई हुई है, वहां अगर इस प्रकार प्रत्यक्ष में असत्य साबित होने वाले प्रसंग सामने आ रहें है तो ऐसे वचनों को विना विचारे आंख मींच कर सत्य मानने वाला तो भलेई मान ले पर विचार-वाले का तो यह कर्तव्य हो जाता है कि जो विधि और निषेध मनुष्य-जीवन के लिये परम शांति के हमारे शास्त्र बतला रहे हैं, वह वास्तव में हित के हैं या नहीं—इसका विचार कर अमल में लावें। ऐसा नहीं कि शास्त्रों मे कह दिया कि हर हालत में भूख-प्यास से खुद के प्राण देने में धर्म है तो धर्म ही मान बैठे और भूख प्यास से मरते को बचाने की सहायता करने में अधर्म है तो अधर्म ही मान बैठे।

———※———

'तरुण जैन' फरवरी सन् १९४२ ई०

गणित सम्बन्धी भूलें

गत जनवरी के लेख में मैंने कहा था कि प्रत्येक जगह जहां जैन शास्त्रों में किसी वस्तु का आकार गोल बताकर उसका व्यास बताया है और फिर उस व्यास की जो परिधि बताई है, वह सब की सब परिधियां असत्य और गलत हैं। सूर्य-प्रज्ञप्ति, चन्द्र-प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति और जीवाभिगम—इन चार सूत्र ग्रन्थों में प्रायः सैकड़ों जगह गोलाई के व्यास बता कर उनकी परिधियां बताई हैं जो सब की सब असत्य और गलत है। इनमें से करीब ५९० परिधियों की मैंने गणित करके जांच की तो सब की सब असत्य उतरीं। इसके पश्चात् तो परिधि निकालने का गुर (Formula) मिल गया जो खुद ही असत्य है। तब यह निश्चय हो गया कि जिस किसी भी सूत्र ग्रन्थ में जहां कहीं भी गोलाई का व्यास बता कर परिधि बताई हुई मिले, वह सर्वथा असत्य होगी। मैंने सोचा कि जाची हुई इन असत्य परिधियों का एक चार्ट बना कर इस लेख में दे दूं, मगर लेख बड़ा हो जाने के खयाल से चार्ट न देकर मैं यही अनुरोध करूंगा कि जिनको इन परिधियों की सत्यता पर विश्वास हो, वे कृपा करके एक दफा वर्तमान गणित द्वारा जांच कर देख लें। आज इस विज्ञान-युग में जब कि गणित का सूक्ष्मातिसूक्ष्म

विकास हो चुका है, साधारण-सी गणित में इस प्रकार की गलतियों का पाया जाना बड़ी दयनीय अवस्था की बात है। गणित-ग्रन्थ लीलावती के देखने से अनुमान होता है कि भास्कराचार्य के जमाने तक भी गणित का काफी सूक्ष्म ज्ञान हो चुका था मगर जैन शास्त्रकारों का गणित विषयक ज्ञान देख कर तो आश्चर्य होता है कि ऐसी गणित करने वालों के साथ सर्वज्ञता के शब्द का सम्बन्ध किस आधार पर स्थापित किया गया। गणित एक ऐसा विषय है जिसमें किसी की ढीठाई और दुराग्रह नहीं चल सकता प्रश्न की सच्ची फलावट होने पर अवश्य ही सही सही उत्तर प्राप्त होगा। मुनि श्री अमोलक ऋषि जी महाराज के भाषानुवाद कृत दक्षिण हैदराबाद वाली सूर्य-प्रज्ञप्ति के पृष्ठ ४८ में एक स्थान पर ९९६४० योजन लम्बे चौड़े व्यास की बताई हुई परिधि में एक मजे की बात देखने में आई। बताया है कि परिधि ३१५०८९ योजन १ कोस ७६८ धनुष्य ४५ अंगुल ४ यव ४ युक ६ लिक्ष और १ बालाग्र के $\frac{३४३१०२}{६३०१७८}$ भाग जितनी है। एक बाल के अग्रभाग के भी लाखों में से लाखों भागों की सूक्ष्मता दिखला कर सर्वज्ञता की महिमा बढ़ाने में कमाल कर दिया गया है मगर खेद है कि Simplify (संक्षेप) करने पर यह संख्या कट कर छोटी हो जाती है। जैन शास्त्रों में व्यास की परिधि निकालने के लिये जो गुर Formula बताया गया है, वह इस प्रकार है कि जिस व्यास की परिधि निकालनी हो उसका वर्ग करके दस गुना करो और फिर उसका वर्गमूल

निकाल लो, वही परिधि होगी। यह गुर किस गुरु से प्राप्त किया, यह तो सर्वज्ञ ही जानें, बाकी practically परीक्षा करने पर यह गुर सर्वथा असत्य प्रमाणित होता है। जिस गणित का गुर ही झूठा हो, वहां सच्चे उत्तर का मिलना असम्भव से भी असम्भव है। इस प्रकार गणित के अधूरे ज्ञान पर सर्वज्ञता की मोहर लगाना सर्वज्ञता के शब्द का कितना बड़ा उपहास है, पाठक स्वयम् बिचार लें। जैन शास्त्रों की गणित में केवल परिधियां ही असत्य हैं, सो बात नहीं है। इनके तो क्षेत्रफल बताने में भी ऐसा ही हुआ है। एक लाख योजन के लम्बे-चौड़े गोलाकार जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल बताते हुए सर्वज्ञों ने कहा है कि जम्बूद्वीप के एक एक योजन के समचोरस खण्ड किये जायें तो ७९०५६९४१५० खण्ड होकर ३५१५ धनुष्य ६० अंगुल क्षेत्र बाकी रह जायगा। यह कथन सर्वथा असत्य और गलत है। वर्तमान गणित के हिसाब से एक लाख योजन लम्बे-चौड़े व्यासवाले गोलाकार क्षेत्र के यदि एक एक योजन के समचोरस खण्ड किये जायं तो ७८५३९८१६२५ खण्ड होते हैं और यही इसका क्षेत्रफल है। यदि हम जन शास्त्रों के बताये हुए धनुष्यों और अंगुलों की सूक्ष्मता को किनारे रख दें तो भी ७९०५६९४१५० और ७८५-३९८१६२५ के दरमियान ५१७१२५२५ योजन यानी २०६८५०-१००००० माइल का बहुत बड़ा अन्तर पड़ता है जो सर्वज्ञता को असत्य साबित करने के लिये काफी है। पाठक बृन्द, किसी स्थान के क्षेत्रफल निकालने में जहां २½ खरब माइल से भी

अधिक बड़ा अन्तर पड़ रहा हो उस पर अक्षर अक्षर सत्यता की मोहर लगाना और सर्वज्ञता का दावा पेश करना कहां तक युक्तिसङ्गत है, इसके प्रमाणित करने की जिम्मेवारी तो दावा पेश करनें वालों पर खड़ी है।

गत लेखों में खगोल और भूगोल के विषय की प्रत्यक्ष असत्य प्रमाणित होनेवाली २६ बातों को आप देख चुके हैं और जनवरी के अङ्क मे जैन शास्त्रों में सैकड़ों जगह बताई हुई परिधियों के असत्य होने की बात मेरे लेख से और लाडनूँ के श्री मूलचन्दजी वैद के "लोक के कथित माप का परीक्षण" शीर्षक लेखसे जैन शास्त्रों में बताये हुए लोक के आकार के अनुसार असत्य प्रमाणित होनेवाले ३४३ के घनफल को आप देख ही चुके हैं। इस पर भी यदि अक्षर अक्षर सत्यता का विश्वास कोई अपने दिमाग से न हटा सके, तो बलिहारी हैं उस दिमाग की। भारतीय दिमाग में मजहबी गुलामी का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। सदियों से चढ़ा हुआ यह गुलामी का रंग उतरते भी काफी समय लेगा। मजहबी गुलामी ने संसार मे मानव समाजपर जो भीषण अत्याचार करवाये, इसका इतिहास साक्षी है। सच्ची बात कहने वालों को सूली चढ़वाया, फांसी दिलवाई, जिन्दे आधे जमीन में गड़वा कर पत्थरों से मरवाया आदि क्या क्या इस तरह की गुलामी ने नहीं करवाया ? आज भी भारत की जो असहाय अवस्था हो रही है, वह एक मात्र मजहबी गुलामी का ही परिणाम है। अब भी मजहब के नाम पर

तीर्थ-यात्राओं, कुम्भादि मेलों, नये नये मन्दिरों के निर्माण और प्रतिष्टाएँ कराने, महाराजोंके चौमासे कराने आदि नाना तरह के मजहबी आडम्बरों में और इन ६० लाख 'सन्तों' की निठल्ली फौज को बैठे बैठे खिलाने में भूखे भारत के करोड़ों रुपये प्रति वर्ष नष्ट होते हैं। क्या भारत को शिक्षा के प्रचार, अनाथों के पोषण, बेकारों के लिये उद्योग, अशिक्षितों को शिक्षा दिलाने आदि नाना तरह के कामों के लिये द्रव्य की आवश्यकता नहीं है? मजहबी आडम्बरों के लिये तो सेठों की थैलियों के मुँह सर्वदा खुले रहते हैं मगर इन अभावों को रफा करने के लिये जब द्रव्य की आवश्यकता होती है तो सेठ लोग नाना तरह के बहाने ढूंढ़ने लगते हैं। बल्कि कुछ महापुरुष तो यहां तक कहने में भी नहीं हिचकिचाते कि इन सब कामों के करने में सहायता देना एकान्त पाप और अधर्म है। इसका कारण ही एक मात्र यह है कि हमारे उपदेशक शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता की दुहाई पर मानव समाज को गुमराह कर रहे हैं। स्वर्ग और मोक्ष के लुभावने सुखों का लालच बता कर मजहबी आडम्बरों में द्रव्य खर्च करने को आकर्षित करते रहते हैं। यही कारण है कि मजहबी आडम्बरों में प्रति वर्ष करोड़ों रुपये फूंके जा रहे हैं। मगर सार्वजनिक लाभ के कामों के लिये बहाना बता दिया जाता है। मेरे एक मित्र, जो जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के मानने वाले हैं, मुझ से पूछने लगे कि "शास्त्रों की असत्य बातों को इस प्रकार लेखों द्वारा आप क्यों दे रहे हैं?"

मैंने कहा—"इसका कारण तो मैं गत जनवरी के मेरे लेख में दे चुका हूं कि समाज़-हित के साधनों पर कुठाराघात करने वाले भावों के उत्पन्न होने की गुंजाइश इन जैन शास्त्रों से ही प्राप्त हुई वरना संसार मे ऐसा कोई मजहब नहीं है जिसके शास्त्रों से यह भाव उत्पन्न हुए हों कि सामाजिक मनुष्य को भी शिक्षा-प्रचार करने, भूखे प्यासे तड़फ मरते को अन्न-पानीकी सहायता करने, अनाथों की रक्षा करने, अस्वस्थ माता, पिता, पति की सेवा-सुश्रुषा करने आदि सत्कार्यों के करने में एकान्त पाप और अधर्म होता है।" मेरे मित्र कहने लगे कि "सभी सम्प्रदाय तो ऐसा कहते नहीं। आपके मन्दिर पंथ के सिद्धान्तानुसार तो ऐसे समाज-हित के सत्कार्यों में सहायक होना पुण्य-उपार्जन का हेतु कहा गया है।" मैंने कहा—"इसीलिये तो केवल भावों के उत्पन्न होने की गुंजाइश" शब्दोंका प्रयोग किया गया है वरना सब पंथ यदि एक-सा ही कहते तो साफ साफ यही कह दिया जा सकता कि समाज-हित के कामों को जैन शास्त्र एकान्त पाप और अधर्म बतला रहे हैं। मैंने कहा—"यदि आप भी लोकोपकारक कामों के करने में पुण्य-उपार्जन का हेतु कहते तो मेरे जैसे गृहस्थ व्यक्ति को इन शास्त्रों की बातों को परीक्षा पर चढ़ाने की सूझती भी नहीं। गृहस्थों को शास्त्र पढ़ने के लिये तो १४४ धारा की हिदायत लागू की हुई है। मेरा यह उसूल ही नहीं है कि किसी साधु-संस्था के व्यक्तिगत आचरणों पर या व्यक्तित्व पर आक्षेप करूं बल्कि जो साधु अपना शुद्ध संयमी जीवन

व्यतीत करते हैं, वे हमारी श्रद्धा और आदर के भाजन हैं, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हों। मैं यह मानता हूं कि साधु अपने कल्प यानी अपनी संस्था के नियम के अनुसार अपने खुद के शरीर से समाज-हित के सत्कार्यों में सहयोग न दे सके तो न दें, इसमें समाज का कुछ बनता बिगड़ता नहीं; मगर सामाजिक मनुष्य को गलत मार्ग पर ले जाने वाले सिद्धान्तों का हमें विरोध अवश्य है। यदि इन शास्त्रों के वचन परीक्षा में अक्षर अक्षर सत्य उतरते तो इनमें बताई हुई पुण्य और धर्म उपार्जन वाली प्रत्येक परोक्ष बात के लिये भी विश्वास पर ही चलना हमारा कर्तव्य था मगर यहां तो प्रत्यक्ष बातों में भी सत्य कोसों दूर है। इसके अलावा हम एक ही शास्त्रों को मानते हुए एक सम्प्रदाय लोकोपकारक सत्कार्यों को करने में धर्म कह रहा है तो दूसरा सम्प्रदाय एकान्त पाप और अधर्म कह रहा है। हम किसकी सूझ पर भरोसा करें।" मेरे मित्र कहने लगे—"ऐसी दस-बीस बातें परीक्षा में असत्य उतर रही हैं तो क्या हुआ ? और हजारों बाते तो शास्त्रों में सत्य हैं।" मैंने कहा "यह आप को किसने कहा कि दस बीस बातें ही परीक्षा में असत्य उतर रही हैं और हजारों बातें सत्य हैं।" वे कहने लगे कि "हमारे सन्त मुनिराज ऐसा फरमा रहे हैं।" मैंने कहा—"फरमाने वाले भूल कर रहे हैं"। शास्त्रों की अवस्था ठीक उनके फरमाने से विपरीत है। यदि कोई मिथ्या विवाद न करे तो मैं यह प्रमाणित कर सकता हूं कि शास्त्रों में हजारों बातें ऐसी है जो मेरे

बताये हुए असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव की श्रेणी में प्रयुक्त होगी। अभी तक तो जैन शास्त्रों की केवल प्रत्यक्ष में असत्य प्रमाणित होने वाली बातों में से ही थोड़ी सी मैंने लिखीं हैं। लगातार यदि ऐसी असत्य प्रमाणित होने वाली बातें ही लेखों द्वारा लिखी जायें तो बरसों लिखी जा सकती हैं। अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होने वाली बातों का तो अभी तक स्पर्श ही नहीं किया गया है"। एक दूसरे मित्र जो इन शास्त्रों की असत्य बातों को अब हृदय से असत्य समझने लगे हैं यानी जो सम्यक्त्व को प्राप्त हो गये हैं, मुझसे कहने लगे—कुछ लेख अब असम्भव और अस्वाभाविक बातों के भी देने चाहिये वरना बरसों तक इनकी बारी ही नहीं आवेगी। इन मित्र की युक्ति मेरे भी जंची। इसलिये भविष्य में केवल असत्य प्रमाणित होने वाली बातों पर ही लगातार न लिख कर कभी असत्य कभी अस्वाभाविक और कभी असम्भव बातों पर लिखा करूंगा।

‘तरुण जैन’ मार्च सन् १९४२ ई०

असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव

गत जनवरी और फरवरी के मेरे लेखों से यह प्रमाणित हो चुका है कि जैन शास्त्रों में सैकड़ों जगह बताया हुआ गणित सर्वथा असत्य और गलत है। गोलाई के व्यास की परिधि और क्षेत्रफल बताने में जहां इस प्रकार सर्वज्ञता के नाम पर अल्पज्ञता का स्पष्ट परिचय मिल रहा है और उन्हीं शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता की दुहाई पर सामाजिक मनुष्य के लिये यह उपदेश मिल रहा है कि शिक्षा प्रचार करना, भूखे प्यासे को अन्न-पानी की सहायता करना, माता, पिता, पति आदि की सेवा सुश्रूषा करना अधर्म है यानी सामाजिक जीवन को सुखी एवं उन्नत बनाने वाले जितने भी साधन हैं, सब एकान्त पाप और अधर्म हैं, तो जिस मनुष्य के दिमाग में किञ्चित भी सोचने की शक्ति है वह यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि शास्त्रों के ऐसे बचनों को हम किस सत्यता के आधार पर अक्षर अक्षर सत्य मान रहे हैं? अब तक मैंने ‘तरुण’ में जितने लेख दिये, वे सब प्रश्नों के रूप में थे। मेरी भावना यह थी कि देखूं, हमारे शास्त्रज्ञ, जिनका व्यवसाय (Profession) केवल इन शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता पर टिका हुआ है, शास्त्रों के असत्य प्रतीत होने वाले वचनों को सत्य साबित कर

दिखाने के लिये क्या प्रयत्न करते हैं ? परन्तु अभी तक किसी ने भी मेरे प्रश्नोंके समाधान करने का प्रयास तक नहीं किया। मुझे अब यह विश्वास हो गया है कि जैन शास्त्रों की असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होनेवाली बातों के समाधान करने का किसी का भी साहस नहीं हो सकता। कारण, यह बातें वास्तवमें ही ऐसी हैं। अतः मैं यह चुनौती देता हूं कि कोई सज्जन शास्त्रों की इन बातों का समाधान कर दिखावें।

गत लेख में मैंने कहा था कि भविष्य में केवल असत्य प्रमाणित होनेवाली बातों पर ही लगातार न लिख कर कभी असत्य, कभी अस्वाभाविक और कभी असम्भव प्रतीत होनेवाले विषयों पर लिखा करूंगा; अतः प्रस्तुत लेख में जो बातें लिख रहा हूं वह इन तीनों स्तम्भों को ही प्रदर्शित करने वाली हैं। इसमे कुछ भाग असत्य, कुछ अस्वाभाविक और कुछ असम्भव हैं। जैन शास्त्र जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के कालाधिकार मे काल (समय) के माप की गणित बताई हुई है, जो इस प्रकार है—

असंख्यात समय	१ आवलिका
३७७३ आवलिका	१ उश्वास
३७७३ आवलिका	१ निश्वास
७५४६ आवलिका	=१ श्वासोश्वास या पाणुकाल
७ पाणुकाल	१ स्तोक
७ स्तोक	१ लव
७७ लव	१ मुहूर्त—यानी

३७७३ श्वासोश्वास	१ मुहूर्त
३० मुहूर्त	१ अहोरात्रि
१५ अहोरात्रि	१ पक्ष
२ पक्ष	१ मास
२ मास	१ ऋतु
३ ऋतु	१ अयन
२ अयन	१ सम्वत्सर
५ सम्वत्सर	१ युग
२० युग	१ शतवर्ष
८४००००० वर्ष	१ पूर्वांग
,, पूर्वांग	१ पूर्व
,, पूर्व	१ त्रुटितांग
,, त्रुटितांग	१ त्रुटित
,, त्रुटित	१ अडडांग
,, अडडांग	१ अडड
,, अडड	१ अववांग
,, अववांग	१ अवव
,, अवव	१ हुहुतांग
,, हुहुतांग	१ हुहुत
,, हुहुत	१ उत्पलांग
,, उत्पलांग	१ उत्पल
,, उत्पल	१ पद्मांग

८४००००	पद्मांग	१ पद्म
,,	पद्म	१ नलिनांग
,,	नलिनांग	१ नलिन
,,	नलिन	१ अस्थिनेवुरांग
,,	अस्थिनेवुरांग	१ अस्थिनेवुर
,,	अस्थिनेवुर	१ अयुतांग
,,	अयुतांग	१ अयुत
,,	अयुत	१ नयुतांग
,,	नयुतांग	१ नयुत
,,	नयुत	१ प्रयुतांग
,,	प्रयुतांग	१ प्रयुत
,,	प्रयुत	१ चुलितांग
,,	चुलितांग	१ चुलित
,,	चुलित	१ शीर्ष प्रहेलितांग
,,	शीर्ष प्रहेलितांग	=१ शीर्ष प्रहेलित

=७५८२६३२५३३०७३०१०२४११५९७९७३५६९९७५६९६४०६
२१८८६६८०८०१८३२९६०००००००००००००००००००००००००००
००
००
०००००००००००००००००००००००००००००० वर्ष ।

ऊपर बताये हुए इन आंकड़ों में कई स्थल विचार करने के

काबिल हैं। सब से पहिले जहां एक मुहूर्त में ३७७३ श्वासोश्वास बताया है, वह असत्य प्रतीत होता है। शास्त्र में बताया है कि "यह ३७७३ श्वासोश्वास हृष्ट-पुष्ट बलवंत रोग रहित पुरुष के जानना"। एक मुहूर्त के ४८ मिनिट माने गये हैं। वर्तमान समय में एक हृष्ट-पुष्ट रोग रहित मनुष्य के एक मिनिट में १५ श्वासोश्वास माने जाते हैं। इस हिसाब से एक मुहूर्त यानी ४८ मिनिट में ७२० श्वासोश्वास हुए। इसलिये ३७७३ श्वासोश्वास का बताना असत्य प्रतीत होता है। यदि कोई कहे कि जिस समय शास्त्रों में कहा गया था, उस समय शायद मनुष्य के श्वासोश्वास की गति तेज होगी और एक मुहूर्त में ३७७३श्वासोश्वास होते होंगे। परन्तु यह कयाश ठीक नहीं हो सकता। कारण, यह माना गया है कि बालक और वृद्ध, जिनकी कि बमुकाबिले हृष्ट-पुष्ट जवान के शक्ति कम होती है, के श्वासोश्वास की गति अधिक होती है। यह भी मानी हुई बात है कि वर्तमान समय के मनुष्यों से भगवान महावीर के समय के मनुष्यों में शक्ति अधिक थी। इसलिये उनके श्वासोश्वास की गति अधिक कदापि नहीं होनी चाहिये। फिर श्वासोश्वास की यह उलटी दशा कैसे बताई? क्या अन्य बातों की तरह श्वासोश्वास भी बढा कर पंचगुने बताये गये है? इन आंकड़ों में दूसरा स्थान विचार करने का है—चौरासी लाख पूर्व का एक त्रुटितांग बताना। भगवान ऋषभदेव स्वामी की आयु जैन शास्त्रों में सब जगह चौरासी लाख पूर्व की

बताई गई है जिसको हम ५९२७०४००००००००००००००० वर्ष की भी कह सकते हैं और सुविधा से बोलने के लिये एक त्रुटितांग की भी कह सकते हैं। व्यावहारिक ज्ञान से एक त्रुटितांग ही कहना मुनासिब समझना चाहिये, कारण जैसे राम ने श्याम को दस रुपये दिये तो व्यावहारिक भाषा में राम यह नहीं कहेगा मैंने श्याम को ६४० पैसे दिये या १९२० पाई दी। यदि वैसा कहेगा तो वेवकूफ कहलायेगा। इसी न्याय से जैन शास्त्रकारों को भी भगवान ऋषभदेव की आयु एक त्रुटितांग की कहनी चाहिये थी मगर शास्त्रों में सब जगह चौरासी लाख पूर्व का ही कथन है। उनकी भावना शायद संख्या को बड़ी से बड़ी बता कर कहने की रही होगी। ५९२७०४००००००००००००००० की यह संख्या २१ अंकों की है और भारतीय संख्या के नाम केवल १९ अङ्क तक ही है। इस से आगे कोई नाम नहीं है। इसीलिये भगवान ऋषभदेव की आयु वर्षों मे नहीं बता सके। यदि संख्या का कोई नाम फिर होता तो अवश्य उसी नाम से वर्षों में बताते। भगवान ऋषभदेव की आयु को त्रुटितांग न बताकर चौरासी लाख पूर्व के नाम से बताना यह साफ जाहिर करता है कि तिल को ताड़ कहने की भावना उनके हृदय में काम कर रही थी। दस रुपये को १९२० पाई कहने की तरह इस बात को हम अस्वाभाविक कह सकते हैं। इन आंकड़ों मे विचार करने का तीसरा स्थान है—चौरासी लाख पूर्व से लगा कर आखिरी शीर्षप्रहेलित तक की प्रत्येक संख्या को

चौरासी लाख गुना अधिक बताते हुये उनके नाम करणकी रचना और ऐसी असम्भव कल्पना का करना। त्रुटितांग, त्रुटित-अडडांग, अडड-अववांग, अववहुहुतांग, हुहुत आदि ऐसे निरर्थक और ऊटपटांग शब्द हैं जिनका कोई अर्थ भी नहीं निकलता और सुनने में भी खिलवाड़-सा मालूम देता है। चौरासी लाख की संख्या को बराबर २८ दफा गुना कर के ऊटपटांग नामों के साथ अङ्कों की संख्या १६४ तक बढ़ाई गई है। हम जैनी लोग बड़े गर्व के साथ कहा करते हैं कि जैन शास्त्रों की संख्या की नामावली का क्या कहना ? अन्य सबों की संख्या की नामावली के नाम तो १६ अङ्कों तक ही समाप्त हैं मगर हमारी संख्या के नाम १६४ अङ्क तक हैं। जैन श्वेताम्बर फिरके की भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के तीन-चार विद्वान सन्तमुनिराजों से मैंने पूछा कि "महाराज, इस त्रुटितांग से लगाकर शीर्ष प्रहेलित तक की संख्या के सब नामों का जैन शास्त्रों में क्या आपने कहीं व्यवहार (use) होता हुआ देखा है ?" तो सब ने यही कहा कि हमने तो कहीं नहीं देखा। त्रुटितांग से शीर्ष-प्रहेलित तक की संख्या का जब कहीं व्यवहार ही नहीं हुआ है तो १६४ अङ्कों का गर्व करने और बड़ाई बघारने का मूल्य ही क्या है ? हम इस बार बार २८ बार गुना होनेवाली चौरासी लाख की संख्या को ककखां-कखख, गगघां-गगघ, चचछां-चचछ की तरह ऊटपटांग शब्दों से सैकड़ों हजारों नाम रचकर संख्या बना दें तो चौरासी लाख से बार बार गुना होकर संख्या के

अङ्क चढ़ कर करोड़ों-अरबों हो जायेंगे। विचारे १६४ अङ्कों की हस्ती ही क्या है ? फिर जितना गर्व करना हो करते रहे। पाठक वृन्द, यह है हमारे १६४ अङ्कों के गर्व का नमूना जिस में अङ्कों की गणना दिखाने में सर्वज्ञता का परिचय दिया गया है।

जैन शास्त्रो के विषय में मेरे लेख गत मई से लगातार 'तरुण' मे निकल रहे हैं जिन से शायद आपने यह अनुमान लगाया होगा कि लेखक जैनी होते हुये भी जैन शास्त्रों का विरोधी प्रतीत होता है कारण आपकी नजर में अब तक केवल कटु समालोचना ही आई है मगर मैं आप को विश्वास दिलाता हूं कि आगे चलकर शास्त्रों की बातों के शीर्षक में आप यह भी देखेंगे कि जैन शास्त्रों में मनुष्य-जीवन के शोधन व निर्माण के जो सुन्दर सुन्दर सिद्धान्त हैं, वे भी सामने आ रहे हैं। आपको यह मालूम रहना चाहिये कि लेखक जैन धर्म और जैन शास्त्रों का विरोधी नहीं परन्तु हित-चिन्तक है। प्रत्यक्ष में असत्य प्रमाणित होने वाले प्रसंगों को जैसे के तैसे बनाये रख कर शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता पर लोगों की श्रद्धा हम कदापि नहीं रखा सकते। शास्त्रों में घुसे हुए बिकारों को निकाल फैंकने पर ही हम उनके सुन्दर सुन्दर सिद्धान्तों को स्थाई रख सकने मे समर्थ हो सकते हैं वरना इस विज्ञान और तर्क के युग में लोगों को बेवकूफ बनाने की चेष्टा करना अपने आपको बेवकूफ साबित करना होगा। हमारे उपदेशक वर्ग मे मुझे ऐसे विरले नजर आ रहे है जो समय के मानस को, युग की

विचार धारा को और मानवहित के तत्वों को समझते हैं। अपने अपने जोम में तने हुए अपनी अपनी सम्प्रदाय के भोले प्राणियों में न-कुछ न-कुछ बातों पर एक दूसरी सम्प्रदाय के प्रति द्वेष फैलाते रहते हैं जिसके बुरे परिणाम स्वरूप जैनत्व का प्रति दिन ह्रास हो रहा है। उचित तो यह है कि अब न-कुछ बातों पर टुकड़े २ न रह कर जैन कहलाने वाले, बड़े पैमाने पर सब एक हो कर जैनत्व को बचा लें।

एक 'थली-वासी' का पत्र

मान्यवर सम्पादक महोदय,

मैं यह पत्र आपकी सेवामें पहिले-पहल ही प्रेषित कर रहा हूं। सब से पहिले मैं आप को मेरा कुछ परिचय दे दूं। मैं थली प्रान्त के एक बड़े शहर का रहनेवाला और दस्से-बीसे से भी बढ़ कर पचीसा-तीसा ओसवाल हूं। शायद अन्य लोगों की तरह आप भी पूछ बैठें कि मैं किस मजहब को माननेवाला हूं ? पहिले ही कह दूं कि मैं इस वक्त जैन श्वेताम्बर पौने-तेरापंथी हूं। आप शायद इसको मजाक समझेंगे, मगर मैं आप से कसमिया कहता हूं कि आपके 'तरुण' ने और खास करके आपके दो लेखकों ने मेरा पाव पंथ घिस डाला। आप समझ गये होंगे—

दो लेखकों से मेरा मतलब किन से है। आपको मालूम रहना चाहिये कि मैं पुस्तैनी जैन श्वेताम्बर तेरापन्थ मजहब का कट्टर श्रावक था मगर आपके इन दो गजब के लेखकों ने हनुमानजीके पाव रोम की तरह मेरा पाव पन्थ काट डाला। मुझे अब यह भय है कि कहीं मेरा रहा-सहा पन्थ ही न उड़ जाय। श्री 'भग्न-हृदय' जी के लेखों को तो मै जैसे-तैसे हजम कर गया। मैंने सोचा कि चलो साधुओं की क्रिया-कलाप और आचरण दुरुस्त नहीं रहे हों तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं, पंचम काल है, हुन्डा सर्पिणी का समय है, मगर श्री वच्छराजजी सिंघी के लेखों ने तो मेरा पंथ ही उड़ाना प्रारम्भ कर दिया। अब तो मैं देख रहा हूं, यह पौने तेरह भी कायम रहना कठिन हो रहा है। मुझे यह पूर्ण विश्वास था कि हमारे पूज्यजी महाराज, जो शास्त्र फरमाते हैं, वे सोलह आना ठीक और अक्षर अक्षर सत्य हैं मगर सिंघीजी के लेखों ने तो आंखों की पट्टी खोल दी। सम्भवतः मुंह की पट्टी भी—जो कभी कभी लगा लेता हूं, अब खतरे में है।

हमारे पूज्यजी महाराज जब थली प्रान्त में विराजते हैं, तब अक्सर मैं सेवा में साथ साथ रहता हूं। मैं देख रहा हूं, जब से यह शास्त्रों की बातें 'तरुण' में आने लगी हैं, हमारे मोटके सन्त आपके 'तरुण' की इन्तजारी में बाट जोहते रहते हैं। इधर कुछ समय से आपके 'तरुण' ने भी नखरे से पेश कदमी शुरू कर दी है। 'तरुण' के पहुंचते ही मोटके सन्तों की मीटिंग होने लगती है।

पूज्यजी महाराज भी पढ़ते हैं। वातावरण में कुछ हलचल-सी मच जाती है। उस दिन मेरे सामने ही 'तरुण' की बातें चल रही थीं। एक अनन्य और विश्वासपात्र श्रावक अर्ज कर रहें थे कि महाराज, आप शिक्षा-प्रचार में पाप बता रहे हैं मगर शिक्षा का सम्बंध अब आजीविका से जुड़ा हुआ है। केवल आपके पाप बताने से लोग पढ़ने से रुक नहीं जायेगे। लोग जैसे जैसे शिक्षित होंगे, उनमें तर्क और ज्ञान बढ़ेगा। ज्ञान बढ़ने से प्रत्यक्ष और गणित से असत्य साबित होनेवाली बातों की अक्षर अक्षर सत्यता की मोहर (छाप) टूटे बगैर कैसे रहेगी ? महाराज ने गम्भीर होकर उत्तर दिया कि 'यह विचारने की बात हो रही है।' सम्पादकोंजी, मुझे तो अब कुछ न कुछ समाज-सुधार की तरफ रवैया बदलता प्रतीत हो रहा है—चाहे उपदेश की शैली बदल कर, चांहे श्रावकों द्वारा समाज-सुधार के लिये कोई संघ या सभा कायम होकर। और अब भी, कुछ न हो तो महान् विनाश निकट ही है। पर मुझे विश्वास होने लगा है कि आप के 'तरुण' की उछल-कूद खाली नहीं जाने की।

कुछ दिन पहिले मैं कार्य वशात् सुजानगढ़ गया था। सिंघीजी से भी मिला। बड़े सज्जन प्रतीत होते थे। मैंने कहा "आपके 'तरुण' के लेखोंमें शास्त्रों की बातों को असत्य प्रमाणित करने की सामग्री तो लाजवाब है, मगर आप सर्वज्ञता के सब्द के साथ कहीं कहीं मजाक से पेश आ रहे हैं। यह बात मेरे हृदय में खटकती है।" वे कहने लगे—क्या आप यह

स्वीकार करते हैं कि सर्वज्ञों की बात प्रत्यक्ष में असत्य हो सकती है। यदि नहीं तो ऐसी बातों के कहने वालों को आप सर्वज्ञ समझें ही क्यों? सर्वज्ञ सत्य के कहनेवाले ही होंगे, और उनके साथ मजाक करने की मजाल ही किस की है?" फिर वे कहने लगे "मैंने ऐसा सोच समझ कर ही किया है कारण, यदि मैं दूसरी शैली से लिखता तो इन लेखोंको रुचि से कोई पढ़ता तक नहीं। एक तो शास्त्रों का विषय ही शुष्क ठहरा और दूसरे उपदेशकों ने अपनी 'सन्तवाणी' द्वारा सैकड़ों वर्षों के लगातार प्रयत्न से लोगों को शास्त्रों के अन्धभक्त बना दिये हैं। इसलिये बिना चुभनेवाले शब्दों से मुझे असर होता नहीं दीखा।" सिंघीजी की बात कुछ मेरे भी जॅची। खैर, आप मुझ से परिचित तो हो ही गये हैं थली प्रान्त की हलचलों के बाबत आप को कभी कुछ पूछना हो तो मुझ से पूछ लिया करें। आप संकोच न करें। मेरा हृदय विशाल है, मै साफ कहूंगा। समय समय पर मैं स्वयं भी आप को यहां की गति-विधि से वाकिफ करता रहूंगा।

आपका,

'थली-बासी'

कल्पना की दौड़

'तरुण जैन' में मेरे लेखों का इस अङ्क से पहिला वर्ष समाप्त होता है। मुझे यह आशा थी कि जैन कहलाने वाले विद्वान एवं शास्त्रज्ञों द्वारा मेरे प्रश्नों का समुचित समाधान प्राप्त होगा मगर खेद एवं आश्चर्य है कि अभी तक किसी ने किसी तरह का भी समाधान करने का प्रयास नहीं किया। मै इस बात को तो मान ही नहीं सकता कि मेरे लेखों को किसी विद्वान और शास्त्रों के जानने वाले ने पढ़ा तक न हो। 'तरुण' की ग्राहक-संख्या चाहे कम हो परन्तु पढ़ने वालों की संख्या अवश्य हजारों की है। अतः विचारशील व्यक्ति को मजबूरन इस नतीजे पर पहुंचना पड़ता है कि वास्तव में शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता का कथन स्वीकार करना अन्धश्रद्धा और अज्ञान के सिवाय कुछ तथ्य नहीं रखता। मैं यह नहीं कहता कि शास्त्रों में लिखी हुई सब ही बातों को असत्य और मिथ्या मान लिया जाय। मेरा कहना तो यह है कि असत्य को अवश्य असत्य माना जाय। शास्त्रों की अन्धश्रद्धा के कारण यदि कोई प्रत्यक्ष असत्य को असत्य नहीं मान सकता तो वह भगवान के बचनों के अनुसार सम्यक्त्ववान कहलाने का अधिकारी नहीं है। जिन शास्त्रों में इस प्रकार प्रत्यक्ष असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव बातें मौजूद हैं, उनकी अक्षर अक्षर सत्यता के आधार पर सामाजिक व्यक्ति को शिक्षा-प्रचार, पारस्परिक सहयोग और सहायता आदि सत्कार्य, जिन पर कि मानव-समाज का अस्तित्व टिका हुआ है, के करने में यदि एकान्त पाप और अधर्म बताया जाय तो समाज के मानस पर इसका कैसा दुष्परिणाम हो सकता हैं यह विचारने का विषय है। जैन कहलाने वालों की इस समय दो मुख्य सम्प्रदायें हैं। श्वेताम्बर

जैन और दिगम्बर जैन। इन दोनों सम्प्रदायों के जैनियों की संख्या इस समय ११-१२ लाख की है। इस ११-१२ लाख की संख्या में प्रायः १०-११ लाख जैनियों की मान्यता यह है कि सामाजिक मनुष्य को शिक्षा-प्रचार आदि सार्वजनिक लाभ के सत्कार्यों को निःस्वार्थ भाव से करने में पुण्य उपार्जन होता है यानी शुभ कर्मों का बन्ध होता है जिनके होने से मनुष्य को ऐहिक सुखों की प्राप्ति और धर्म-करणी करने के साधन उपलब्ध होने का शुभ अवसर प्राप्त होता है। शेष लाख सवा लाख की मान्यता यह है कि सामाजिक मनुष्य को शिक्षा-प्रचार आदि सार्वजनिक लाभ के कामों को निस्वार्थ भाव से करने पर भी एकान्त पाप और अधर्म होता है जिसके परिणाम स्वरूप उसे केवल दुःखों की प्राप्ति होती है। इन दोनों तरह की मान्यताओं के क्या क्या कारण है और किस किस दृष्टिकोण से अपना अपना भिन्न मत प्रतिपादन किया जा रहा है, यह मैं किसी स्वतन्त्र लेख में विस्तार पूर्वक बताऊँगा। यह मानी हुई बात है कि इन दोनों तरह की मान्यताओं का आधार इन शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता पर अवलम्बित है। इस सत्यता का परिचय मेरे लेखों से आपको बखूबी मिल ही चुका है और मिलता रहेगा। इन शास्त्रों के आधार पर इस प्रकार की जो परस्पर विरोधी और भिन्न भिन्न विचारधारा उत्पन्न हुई है इसका कारण किसी व्यक्ति विशेष का निजू स्वार्थ नहीं है परन्तु इन शास्त्रों की सन्दिग्ध भाषा और रचना की त्रुटि है। मनुष्यके कर्तव्य और धर्म बतलाने मे जिस प्रकार के सन्दिग्ध शब्दों और भावों का इनमें प्रयोग हुआ है, उनसे किसी का मुगालते (भ्रम) में पड़ना वहुत ही सम्भव है। वरना क्या कारण है कि एक ही शास्त्रों को मानते हुए हमारी जैन श्वेताम्बर शाखा की मुख्य

तीनों सम्प्रदायों के विज्ञ सन्त मुनिराज मनुष्य-जीवन के उत्कर्ष के लिये भिन्न भिन्न तरह से और परस्पर विरोधी कर्तव्य और धर्म बतला रहे हैं। इसलिये जैन कहलाने वाले सब सम्प्रदायों के शास्त्रज्ञों, संयमी एवं विज्ञ मुनिराजों और जन-समुदाय के विचारशील व्यक्तियों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि शास्त्रों के शब्दों के आधार पर जो खींचातानी और विरोध खड़ा हुआ है उसे छोड़ कर हम सब जैनी एक सूत्र में बंध जायें और एक महती सभा का आयोजन करके मानव-जीवन के हितों का एकसा मार्ग स्थिर करलें। छोटी छोटी नगण्य नुक्ताचीनी पर बाल की खाल खींचने के स्वभाव को त्याग कर उदारता पूर्वक सब मिलकर एक हो जायें। बादशाह अकबर के समय में (लगभग ३०० वर्ष पहिले) जिन जैनियों की संख्या करोड़ों पर थी, आज उसका क्या हाल हो रहा है—वह किसी से छिपा नहीं है। छोटे छोटे टुकड़ों में बँट कर हम जैनी परस्पर एक दूसरे के शत्रु हो रहे हैं। जैनत्व के लिये यह बड़ी घातक और पैमाल करने वाली अवस्था है।

जैन शास्त्र नन्दी सूत्र में (जो मुनि श्री अमोलक ऋषिजी महाराज, दक्षिण हैदराबाद कृत भाषानुवाद सहित है) पृष्ठ १६५ से १६७ तक चौदह पूर्वों का वर्णन है। उसमें १४ ही पूर्वों के नाम और वे किन किन विषयों पर लिखे हुये हैं, बताते हुये प्रत्येक पूर्व की पदसंख्या बतलाई है और किस किस पूर्वके लिखने में कितनी कितनी स्याही खर्च हो सकती है इसकी कल्पना की है जो इस प्रकार है कि पहिले पूर्व के लिखने में एक हाथी अम्बा बाडी सहित स्याहीके पात्र में डूब जाय-जितनी स्याही खर्च होती है तथा दूसरे पूर्व में ऐसे ही दो हाथियों जितनी स्याही और तीसरे में चार, चौथे में आठ, पांचवे में सोलह इसी प्रकार प्रत्येक

पूर्व में पहिले पूर्व से दुगुणी स्याही बढ़ाते हुये शेष के चौदहवें पूर्व मे ८१९२ हाथियों के डूबने जितनी स्याही की कल्पना की है जिसका यन्त्र इस प्रकार दिया है—

	पूर्वों के नाम	पद संख्या	स्याही-खर्च के हाथियों की संख्या
१	उत्पाद पूर्व	१००००००००	१
२	अग्रीयणी पूर्व	९६०००००	२
३	वीर्य प्रवाद पूर्व	७००००००	४
४	अस्ति नास्ति पूर्व	६००००००	८
५	ज्ञान प्रवाद पूर्व	१०००००००	१६
६	सत्य प्रवाद पूर्व	१००००००६	३२
७	आत्म प्रमाद पूर्व	२६००००००००	६४
८	कर्म प्रवाद पूर्व	१८००००००	१२८
९	प्रत्याख्यान पूर्व	८४०००००	२५६
१०	विद्या प्रवाद पर्व	१००१००००	५१२
११	अवन्ध पूर्व	२६००००००००	१०२४
१२	प्राण प्रवाद पूर्व	१५६०००००	२०४८
१३	क्रिया विशाल पूर्व	९०००००००	४०९६
१४	लोकविन्दुसार पूर्व	१२५००००००	८१९२
	कुल संख्या	८३९६१०००६	१६३८३

शास्त्रों में यह भी लिखा है कि ३२ अक्षरों का एक श्लोक और एक पद के ५१०८८४६२१½ श्लोक होते हैं। ऊपर दिये हुये यन्त्र से ज्ञात होता है कि पहिले उत्पाद पूर्व, जिसमें एक करोड़ पद संख्या है, के लिखने में अम्बाबाड़ी सहित एक हाथी डूबे जितने बड़े भरे हुए पात्र जितनी स्याही (ink) खर्च होती है और बारहवें प्राण-प्रवाद पूर्व जिस में एक करोड़ छप्पन लाख पद संख्या है, के लिखने में वैसे ही २०४८ हाथियों जितने पात्र की स्याही खर्च होती है। सातवें आत्मप्रवाद पूर्व जिसमें २६ करोड पद संख्या है, के लिखनेमें ६४ हाथियों जितनी स्याही और बारहवें प्राणप्रवाद पूर्व जिसमें केवल एक करोड़ छप्पन लाख पद संख्या है, के लिखने में २०४८ हाथियों जितनी स्याही खर्चहोती है। पहिले उत्पाद पूर्व में एक हाथी जितनी और नौवें प्रत्याख्यान पूर्व जिसमें पहिले उत्पाद पूर्व से १६ लाख पदों की संख्या कम है उस में २५६ हाथियों जितनी स्याही खर्च होने की कल्पना की है। सब पूर्वों की पद संख्या और हाथियों जितनी स्याही खर्च की संख्या पर दृष्टि डालने से सर्वज्ञता यह साफ बतला रही है कि कल्पना करने की सुन्दरता लाजवाब है। पद के अक्षरों की संख्या निश्चित करके स्याही खर्च के हाथियों की इस प्रकार की अबोध कल्पना करना अपनी सूक्ष्म बुद्धि का परिचय देना है। लाडनूं के श्री मूलचन्दजी बैद ने अपने "लोक के कथित माप का परीक्षण" शीर्षक गत दिसम्बर के 'तरुण' के लेख में पृष्ठ ६८६ पर कहा है कि "कितने

ही जैन विद्वानों के सामने यह विरोधाभास रखा गया तो उन्होंने कहा कि ऐसा तरीका निकाला जिससे ३४३ घनरज्जू सिद्ध हो जाय।" जैन शास्त्रों में लिखी हुई असत्य कल्पना को जबरन सत्य सिद्ध करने का तरीका चाहने वाले ऐसे विद्वानों की संतुष्टि के लिये मुझे एक कल्पना सूझ पड़ी वह लिख दूं ताकि ऐसे विद्वानों को भी संतोष मिले। जिन पूर्वों मे पद संख्या वहुत गुणी अधिक है और स्याही खर्च के हाथियों की संख्या बहुत कम है उनके लिये तो यह कह दिया जाय कि पदों के अक्षर छोटे छोटे बहुत महीन थे और जिन पूर्वों की पद संख्या बहुत अधिक है उनके लिये यह कह दिया जाय कि पदों के अक्षर बहुत बड़े बड़े थे। जैसे पहिले उत्पाद पूर्व के अक्षर यदि एक एक इञ्च के थे तो बारहवें प्राणप्रवाद पूर्व के प्रत्येक अक्षर उससे १४०० गुणा बड़े लगभग ११६ फुट के थे और पहिले पूर्व के अक्षर पतली स्याही के लिखे हुए और बारहवें के गाढ़ी से गाढ़ी स्याही के लिखे हुए थे। इस प्रकार कह कर हम उन विद्वानों के लिये तरीका सुझा सकते हैं। यह तो हुई स्याही खर्च के हाथियों की संख्या की बात। अब जरा चौदह पूर्व के श्लोक और अक्षर संख्या पर भी विचार कर लें। चौदह पूर्व के पदों की कुल संख्या ८३६६१०००६ है। एक पद के ५१०८८४६२१३ श्लोक के हिसाब से चौदह पूर्व के कुल श्लोकों की संख्या ४२८६४३८४०१२२६२२७२६ होती है और एक श्लोक के ३२ अक्षर के हिसाब से चौदह पूर्व के कुल अक्षरों की संख्या

१३७२६१६२८८३६३३५२७३२८ होती है। कोई मनुष्य एक मिनिट में १००० अक्षर की तेज रफ्तार से भी यदि उच्चारण करे तो चौदह पूर्वों के केवल अक्षरों को उच्चारण मात्र करने में २६४७७६६५५३२ वर्ष और करीब ४ महीने लगेंगे। चौदह पूर्व के धारक सुधर्मा स्वामी बताये जाते हैं। उनके जीवन-चरित्र में लिखा है कि वे ५० वर्ष गृहस्थ रहे और फिर भगवान महावीर के पास सयंम जीवन (साधुपन) व्यतीत करते हुए आखिर आठ वर्ष केवली अवस्था में रह कर पूरे १०० वर्ष की आयु समाप्त करके वीराब्द सं० २० मे मुक्ति पधारे। यह तो मानी हुई बात है कि गृहस्थ अवस्था में उन्हे चौदह पूर्व का भान तक नहीं था, बाकी रहे ५० वर्ष जिनमें उन्होंने चौदह पूर्व की इतनी बड़ी श्लोक-संख्या का ज्ञान स्वयं प्राप्त किया और अपने पटधर शिष्य जम्बू स्वामी को भी करा दिया। जिन चौदह पूर्वों के अक्षरों का केवल उच्चारण-सो भी रात दिन २४ घन्टे लगातार प्रति मिनिट १००० अक्षरों की तेज रफ्तार के हिसाब से-किया जाय तो करीब २६½ अरब वर्ष लगे, उनका सम्पूर्ण ज्ञान कैसे तो उन्होंने ५० वर्ष में खुद ने किया और कैसे जम्बूस्वामी को करा दिया। यह बड़े आश्चर्य की बात है। क्या यह कोई औषधि का मिक्सचर था कि गिलास भर कर निगल लिया गया। कल्पना की भी कोई हद होती है!

पूर्वों के स्याही-खर्च के हाथियोंकी संख्या और पदों के श्लोक एवं अक्षरों की संख्या तथा सुधर्मा स्वामी से जम्बूस्वामी आदि

को शिक्षण देने की विधि वगैरह को देख कर मुझे तो यह अनुमान होता हैं कि चौदह पूर्व की यह कल्पना ही निराधार होगी। सुधर्मा स्वामी से जम्बूस्वामी को और जम्बूस्वामी से प्रभव स्वामी को इसी तरह परम्परा से पूर्वों के शिक्षण का विधान है। चौदह के पश्चात् १० पूर्वधर और दस के पश्चात् ४ पूर्वधर और चार के पश्चात एक जैसे जैसे ह्रास हुआ, वैसे वैसे कम होते हुए सब पूर्व विच्छेद गये बतलाते हैं। यह पूर्व तो जब विच्छेद गये तब गये होंगे मगर ऐसी कल्पना को सुन कर जिनके हृदय में सवाल तक पैदा नहीं हुआ, उनकी बुद्धि तो अवश्य विच्छेद गई प्रतीत होती है; वरना 'तहत वाणी' के साथ ऐसी कल्पना को भी हजम कर गये—ऐसा नहीं दीख पड़ता।

—*—

'तरुण जैन' मई-जून सन १९४२ ई०

अस्वाभाविक आंकड़े

पाठकवृन्द, मेरे लेखों से अब आपको भली प्रकार अनुभव हो गया है कि जैन-शास्त्रों में असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होनेवाले प्रसंग एकाध नहीं, परन्तु अनेक हैं। मेरे लेखों में ही आप देख चुके हैं कि प्रत्यक्ष में असत्य प्रमाणित होनेवाली बाते सैंकड़ों की संख्या में आपके सन्मुख आ चुकी हैं। गत मार्च और अप्रेलके लेखों में असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव तीनों ही तरह की कल्पनाओं का वर्णन है।

प्रस्तुत लेख में पहले तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव से लगाकर चौबीसवें भगवान महावीर तक प्रत्येक भगवान की आयु, देह-मान, साधुत्वकाल और उनके कैवल्यज्ञान-प्राप्त साधु-साध्वियों की संख्या का जैन-शास्त्रों में जो वर्णन किया है, वह बतलाऊंगा। इन आँकड़ों में असत्य, अस्वाभाविक और असम्भवपन का कितना भाग है, इसका निर्णय करना तो आपके हृदय और विवेक का काम है; मगर बुद्धि और अक़ल का तो यही तकाजा है कि बताई हुई संख्याएं अक्षर अक्षर सत्य कदापि नहीं हो सकतीं। जैन-शास्त्रों में चौबीसों भगवान की आयु, शरीर की लम्बाई, साधुत्वकाल आदि के विषय में जो बतलाया है वह इस प्रकार है—

चौबीस तीर्थंकरों की आयु, शरीर की लम्बाई, साधुत्वकाल आदि का कोष्ठक आगामी पृष्ठ १२०–२१ पर देखिये।

क्रमिक	नाम	लाख पूर्व में	आयु वर्षों में
१	ऋषभ देव	८४	५९२७०४०००००००००००००००
२	अजित नाथ	७२	५०८०३२०००००००००००००००
३	सभव नाथ	६०	४२३३६००००००००००००००००
४	अभिनन्दन	५०	३५२८०००००००००००००००००
५	सुमतिनाथ	४०	२८२२४००००००००००००००००
६	पद्म प्रभु	३०	२११६८००००००००००००००००
७	सुपार्श्व नाथ	२०	१४११२००००००००००००००००
८	चन्द्र प्रभु	१०	७०५६००००००००००००००००
९	सुविधि नाथ	२	१४११२०००००००००००००००
१०	शीतल नाथ	१	७०५६०००००००००००००००
११	श्रेयांश प्रभु		८४०००००
१२	वासुपूज्य		७२०००००
१३	विमल नाथ		६००००००
१४	अनन्त नाथ		३००००००
१५	धर्म नाथ		१००००००
१६	शान्ति नाथ		१०००००
१७	कुथु नाथ		९५०००
१८	अरि नाथ		८४०००
१९	मल्लि नाथ		५५०००
२०	मुनिसुव्रत		३००००
२१	नेमि नाथ		१००००
२२	अरिष्ट नेमि		१०००
२३	पार्श्व नाथ		१००
२४	महावीर		७२

शरीर की लम्बाई				साधुत्व-काल	केवली साधु	केवली आर्यायें
धनुष्यों में	गज	फुट	इञ्च			
५००	८७५	०	०	१ लाख पूर्व	२००००	५००००
४५०	७८७	१	६	,,	२००००	४००००
४००	७००	०	०	,,	१५०००	३००००
३५०	६१२	१	६	,,	१४०००	२८०००
३००	५२५	०	०	,,	१३०००	२६०००
२५०	४३७	१	६	,,	१२०००	२४०००
२००	३५०	०	०	,,	११०००	२२०००
१५०	२६२	१	६	,,	१००००	२००००
१००	१७५	०	०	५० हजार पूर्व	७५००	१८०००
९०	१५७	१	६	२५ ,, ,,		
				वर्षोंमें	७०००	१४०००
८०	१४०	०	०	२१०००००	६५००	१३०००
७०	१२२	१	६	१८०००००	६०००	१२०००
६०	१०५	०	०	१५०००००	५५००	११०००
५०	८७	१	६	७५००००	५०००	१००००
४५	७८	२	३	२५००००	४५००	९०००
४०	७०	०	०	२५०००	४०००	८०००
३५	६१	०	९	२३७५०	३५००	७०००
३०	५२	१	६	२१०००	३२००	६४००
२५	४३	२	३	१३७५०	२८००	५६००
२०	३५	०	०	७५००	१८००	३६००
१५	२६	०	९	२५००	१६००	३२००
१०	१७	१	६	७००	१५००	३०००
९ हाथ				७०	१०००	२०००
७ हाथ				४२	७००	१४००

जैन शास्त्रों में तीर्थंकरों की आयु पूर्वों तथा वर्षों में और शरीर की लम्बाई धनुष्यों तथा हाथों में वर्णन की गई है। एक पूर्व के ७०५६०००००००००० वर्ष होते हैं और एक धनुष्य ३३ हाथ या ५ फुट ३ इञ्च का माना जाता है। आजकल के प्रायः इतिहासकार चौबीस तीर्थंकरों में केवल अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर को सच्चा ऐतिहासिक पुरुष और भगवान पार्श्वनाथ को सन्दिग्ध रूप में मानते हैं। हम कल्पित नहीं मानते तो भी पहिले भगवान ऋषभ देव की आयु की संख्या से दसवें भगवान शीतलनाथ स्वामी की आयु संख्या तक जो कि पूर्वों में बताई है और ग्यारहवें भगवान श्रेयांस प्रभु से बाईसवें भगवान अरिष्टनेमि तक आयु की संख्या जो वर्षोंमें बताई है, पर दृष्टि डलने से हमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि संख्याएं अवश्य कल्पित हैं। किसी भी एक व्यक्ति की आयु की संख्या के अंक इतनी अधिक सुन्नों (Ciphers) के साथ समाप्त होना असम्भव नहीं, तो असम्भव के लगभग अवश्य है। परन्तु इन संख्याओं में तो केवल भगवान महावीर प्रभु के सिवाय तेवीसों ही तीर्थंकरों की आयु के आँकड़ों में कम से कम ऊपर दो सुन्न (Ciphers) और अधिक से अधिक ऊपर की सुन्नों की संख्या १७ पहुंच गई है। इसी प्रकार इतनी अधिक सुन्नों (Ciphers) के साथ समाप्त होनेवाली संख्याओं की आयु का लगातार तेवीसों ही भगवानों के लिये होना क्या अस्वाभाविक नहीं है ? आयु के बावत पूर्वों में दस-दस के अन्तर से संख्या

निश्चत करना और भगवान श्रेयांस प्रभु से वर्षों के अंक भी ८४,७२ ई० ३०,१० पूर्वों के जैसे ही बताना क्या स्वाभाविक माना जा सकता है ? कदापि नहीं। जिस स्थान पर आयु का पूर्वों में बताना समाप्त किया है, उसके नीचे श्रेयांस प्रभु की आयु वर्षों में बताई है। आप देखेंगे कि दसवें और ग्यारहवें भगवान के वर्षों के दरमियान अकस्मात् कितना बड़ा अन्तर पड़ गया है। कहां सत्तर संख छप्पन पद्म वर्ष और कहां चौरासी लाख वर्ष। इसको हम केवल अस्वाभाविक ही नहीं परन्तु असम्भव भी कह सकते हैं। वैसे तो पूर्वों मे बताई हुई इतने अधिक वर्षों की आयु का होना ही असम्भव है मगर पूर्वों की समाप्ति और वर्षों के प्रारम्भ के स्थान में तो ऐसा प्रतीत होता है कि कल्पना करने वालोंने आगे पीछे तक नहीं सोचा। इतिहासज्ञों के कथाश के अनुसार भगवान महावीर और भगवान पार्श्वनाथ की आयु के आकड़ों को यदि हम इस तालिका से अलग कर दें तो बाकी के बाईसों ही भगवान की आयु की संख्या को कल्पित के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता।

अब ज़रा तालिका में वर्णित शरीर-लम्बाई की संख्या पर गौर कीजिये। इसमें भी यदि भगवान महावीर और पार्श्वनाथ के शरीर की लम्बाई की संख्या को अलग कर दें तो बाकी के बाईसों ही भगवान के शरीर की लम्बाई के आंकड़ों का क्रम कल्पित नजर आता है। पांच सौ धनुष्य से पचास-पचास

घटाते हुए जब १०० की संख्या पर पहुंचे तो सोचा कि अब पचास घटाते जाने की गुञ्जाइश नहीं है तो दस दस घटाना प्रारम्भ कर दिया और दस दस घटाते पचास धनुष्य की संख्या तक पहुंच कर पांच पांच धनुष्य घटाने लगे। घटाव के ऐसे क्रम को स्वाभाविक नहीं समझा जा सकता। घटाव के इस क्रम में एक बात ध्यान पूर्वक देखने की है कि आठवें भगवान चन्द्रप्रभु और नौवें भगवान सुबुद्धिनाथ के दरमियानी समय में घटाव पचास धनुष्य का है और नौवें भगवान सुबुद्धिनाथ और दसवें भगवान शीतलनाथ स्वामीके दरमियान घटाव दस धनुष्य का है। इससे साफ जाहिर होता है कि यह घटाव समय के लिहाज से किया हुआ नहीं है। पचास घटाते घटाते जब देखा कि अब फिर पचास घटाने की गुञ्जाइश नहीं है तो दस दस घटाने लगे। खाना पूरी करने की दृष्टि न होती और वास्तविकता होती तो आयु के समय के लिहाज का बर्ताव ओझल नहीं रहता। कारण यहां घटाव में समय का गुजरना ही प्रधान है। साधुत्वकाल की संख्याओं की भी यही हालत है। पहिले भगवान ऋषभदेव से आठवें भगवान चन्द्रप्रभु तक प्रत्येकका साधुत्वकाल एक लाख पूर्व यानी ७०५६०००००००००-०००००० वर्ष का बताया है। इसमें आयु की संख्याके साथ कोई मिलान नहीं है मगर नौवें भगवान सुबुद्धिनाथ से बीसवें भगवान मुनि सुव्रत प्रभु तक लगातार प्रत्येक की पूरी आयु का चौथा हिस्सा साधुत्वकाल का बताया है। इस प्रकार यह

संख्याएं घड़ी हुई सी प्रतीत होती हैं और अस्वाभाविक हैं। चौवीसों ही भगवान के केवलज्ञान-प्राप्त साधु-साध्वियों की संख्या के आंकड़ों की सजावट आश्चर्य जनक है। इस सजावट ने वाकी की सारी सजावट को मात कर रखा है। सारी सजावट नपी तुली है। केवलज्ञान-प्राप्त साधुओं की संख्या मे एक एक हजार और पांच सौ का क्रम से लगातार घटना और साधुओं की प्रत्येक संख्या से साध्वियों की प्रत्येक संख्या का ठीक दुगुणा होना यह साफ जाहिर कर रहा है कि यह स्वाभाविक नहीं हो सकता। केवलज्ञान प्राप्त होना पुरुपार्थ तथा शुभ करनी के फल से होता है और पुरुपार्थ तथा शुभ करनी करनेवालों की संख्या इस तरह निश्चित नहीं हो सकती। फिर इस प्रकार के क्रम से नपे तुले पैमाने पर घटाव और साधुओं से साध्वियों की संख्या का ठीक दुगुणा होना कैसे स्वाभाविक हो सकता है, यह विचारने की बात है। इस तालिका के प्रायः सब आंकड़े अस्वाभाविकपन से भरे पड़े हैं इसके लिये कोई प्रत्यक्ष प्रमाण तो हो नहीं सकता केवल अनुमान से ही हम निर्णय कर सकते हैं कि यह आकड़े स्वाभाविक है या अस्वाभाविक। इसलिये प्रारम्भ में ही मैंने कह दिया है कि इसका निर्णय करना आप के हृदय और विवेक का काम है। मुझे इस वात पर अभी तक आश्चर्य हो रहा है कि जैनशास्त्रों मे त्याग, वैराग्य और संयम रखने के लिये सुन्दर सुन्दर विधान देनेवाले शास्त्रकारों ने इस प्रकार अस्वाभाविक, असम्भव और असत्य प्रतीत होने-

वाली बातों की रचना किस उद्देश्य से की ! यह पहेली अभी तक समझ में नहीं आ रही है। दान, दया, अनुकम्पा पुण्य, धर्म आदि आवश्यक मानव-कर्तव्यों की व्याख्या करने में तो भाषा और भावों को व्यक्त करने की त्रुटियों से आज ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गई है कि एक ही शास्त्रों को माननेवाले हमारे तीनों श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय इन विषयों पर परस्पर लड़ रहे हैं परन्तु असत्य अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होनेवाली वातों के लिये सब का एक मत और एक-सा फरमान है। अतः सब सम्प्रदाय के पथ-प्रदर्शकों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि जिस प्रकार इन असत्य, आस्वाभाविक ओर असम्भव प्रतीत होनेवाली बातों के विषय मे आप एक मत हैं उसी प्रकार दान, दया, पुन्य, धर्म आदि आवश्यक मानव कर्तव्यों की व्याख्या करने में भी एक मत हो जायॅं ताकि मानव-समाज का कल्याण हो।

'तरुण जैन' जुलाई सन् १९४२ ई०

सूत्रों का पारस्परिक विरोध

साधारणतया जैन शास्त्र दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। भगवान महावीर प्रभु ने जो अपने श्री-मुख से फरमाये और गणधर तथा पूर्वधर आचार्यों ने भगवान के कथन को अक्षर-ब-अक्षर परम्परापूर्वक अपने शिष्यों को बताये वे तो जैन सूत्र अथवा जैन आगम के नाम से प्रसिद्ध हैं और पूर्व धरों के

अलावा अन्य आचार्यों व मुनियों द्वारा जो रचे गये, वे जैन ग्रन्थ या जैन शास्त्रों के नाम मे समाविष्ट किये जा सकते है। गत लेखों में जैन सूत्रों की असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होने वाली बातों के विषय में मैंने लिखा था परन्तु प्रस्तुत लेख मे मुझे यह बतलाना है कि एक ही बात के विषय मे एक सूत्र मे कुछ लिखा हुआ है, तो दूसरे मे कुछ ही। यहा तक कि एक सूत्र मे जो लिखा हुआ है, दूसरे मे कहीं कही ठीक उसके विपरीत और विरुद्ध तक लिखा हुआ है। जिन शास्त्रों को सर्वज्ञ-वचन मान कर अक्षर अक्षर सत्य कहनेका साहस किया जा रहा है, उनकी रचना मे यदि इस प्रकार वचन-विरोध मिले तो कम से कम अक्षर अक्षर सत्य कहने का हठ तो नहीं होना चाहिये। जैन सूत्रों के विषय मे जो इतिहास प्राप्त है, उससे भी यह स्पष्ट जाहिर होता है कि वर्तमान समय मे जो सूत्र माने जा रहे है उन्हे अक्षर अक्षर सत्य मानना किसी तरह से भी युक्ति-सङ्गत नहीं हो सकता। भगवान महावीर भाषित सूत्र उनके निर्वाण काल से ९८० वर्ष पर्यन्त अक्षर-ब-अक्षर उनके शिष्यों की स्मरण-शक्ति और याददास्त पर अवलम्बित रहे, पुस्तकों में नहीं लिखे गये थे। इसके पश्चात् श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने विक्रम सम्वत् ५३३ के लगभग उनको पुस्तकों मे लिखवाये जो मथुरा और बल्लभीपुर में ९८० से ९९३ तक १४ वर्ष पर्यन्त लिखे गये थे। मथुरा मे जो सूत्र लिखे गये, वे माथुरी वाचना के नाम से और वल्लभीपुर मे लिखे गये, वे वल्लभी वाचना के

नामसे इस समय भी प्रसिद्ध हैं। ६८० वर्ष पर्यन्त केवल याद-दास्त के बल पर इतनी बड़ी श्लोक संख्या का पाट दर पाट लगातार हरफ-ब-हरफ याद रहना युक्ति-सगत नहीं समझा जा सकता। महावीर-निर्वाण के लगभग १६० वर्ष पश्चात् भगवान के पटधर शिष्य श्री भद्रबाहु स्वामी (श्रुत केवली) के समय में १२ वर्ष का महाभयङ्कर दुष्काल पड़ा जिसकी भयंकरता के परिणाम स्वरूप हजारों साधु पथ-भ्रष्ट हो गये। भगवान भाषित दृष्टिवाद नाम का बारहवा अङ्ग-सूत्र, जिस में चौदह पूर्व और अनेक अपूर्व विद्याओं का समावेश था, लोप हो गया। ऐसी विकट अवस्था में इतने लम्बे अरसे तक अक्षर-ब-अक्षर इस तरह स्मरण रखा जाना असम्भव के लगभग है। श्री देवर्द्धि-गणि क्षमाश्रमणने जो सूत्र लिखवाये थे, उनकी असल original प्रतियों का भी आज कहीं पता तक नहीं है। श्री जैन श्वेताम्बर कानफ्रेन्स, बम्बई ने भारतवर्ष के प्रायः नामी नामी सब प्राचीन पुस्तक-भण्डारों का अवलोकन किया, परन्तु यह प्रतियां कहीं भी नहीं मिलीं। इसी संस्था ने श्री जैन ग्रन्थावली नामक एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें प्रायः प्राचीन पुस्तक भण्डारों में सुरक्षित रखी हुई पुस्तकों तथा जैन आगमों की फेहरिस्त दी है। और यह भी लिखा है कि विक्रम सम्वत् १००० से पहिले का लिखा हुआ कोई भी जैन आगम प्राप्त नहीं हुआ है। शास्त्रों का भगवान के ६८० वर्ष पश्चात् केवल याददास्त के आधार पर लिखा जाना और लिखी हुई उन असल प्रतियों का कहीं पता

तक न होना, इस पर भी उनको अक्षर अक्षर सत्य समझना जब कि प्रत्यक्ष में असत्य प्रमाणित होनेवाली बातें इन शास्त्रों में मौजूद हैं, तो इसको सिवाय कदाग्रह के और क्या कहा जा सकता है। जिस जगह किसी सूत्र का नाम लेकर उसकी महानता और बड़प्पन दर्शाया गया है, उसी जगह उसका लोप होना या विच्छेद जाना भी कह दिया गया है। यह एक आश्चर्य की बात है। ताड़-पत्रों पर हस्त-लिखित अन्य पुस्तकें अनेक स्थानों में दो हजार वर्ष से पहिले की अब भी देखने में आ रही हैं और भगवान महावीर स्वामी के श्री धर्मदास गणि नामक एक शिष्य, जो गृहस्थ अवस्था में विजयपुर के विजयसेन नामक राजा थे और भगवान के स्वहस्त से दीक्षा प्राप्त की थी उनकी उपदेशमाला नामकी एक हस्त-लिखित प्रति पाटण के प्राचीन पुस्तक भण्डार मे सुरक्षित पडी है, जिसका हवाला श्री जैन ग्रन्थावली मे है। ऐसी अवस्था मे जब कि लेखन-कला प्रचलित थी तो दृष्टिवाद अङ्गसूत्र लोप हो गया, चौदह पूर्व लोप हो गये, कई सूत्र जिनके पठन मात्र से देवता प्रकट होकर सेवा मे हाजिर हो जाते थे, वे लोप हो गये—आदि कथन में कितनी सचाई है, यह विचारने का विषय है। इतने बड़े उच्च कोटि के उपयोगी ज्ञान और विद्याओं के भण्डार आगमों को लिपिबद्ध न करके कतई लोप होने देना कितनी बड़ी अकर्मण्यता है जब कि लेखन-कला प्रचलित थी। एक के पश्चात् दूसरा क्रमानुसार जैन सूत्रों के ८४ नाम प्रसिद्ध हैं जिनमें बहुत से

इस समय उपलब्ध नहीं हैं—लोप हो गये बताये जाते हैं।

जैन-श्वेताम्बर मान्यता की इस समय तीन मुख्य सम्प्रदाय हैं। सम्वेगी या मूर्तिपूजक, बाइस टोले या स्थानकवासी और तेरापन्थी। सूत्रों के मानने के विषय में इनके विचार परस्पर भिन्न हैं। सम्वेगी या मूर्तिपूजक भगवान महावीर के पाट से अपने आपको पाट दर पाट अनुक्रम से चले आते हुये बतला रहे हैं और ८४ आगमों को मानते हैं परन्तु इनका यह कथन है कि ८४ में से इस समय अनुक्रमसे ४५ ही आगम उपलब्ध हैं, बाकीमें से अनेक आगम लोप हो गये। स्थानकवासी और तेरा-पंथके विषयमें जिनाज्ञा-प्रदीप नामक ग्रन्थ का ऐतिहासिक कथन यह है कि विक्रम सम्वत् १५३१ के लगभग अहमदाबाद में लुङ्का का नाम का एक व्यक्ति जैन धर्म की पुस्तकों के लिखाने का व्यवसाय किया करता था। श्री रत्नशेखर सूरि नामक तपागच्छ के आचार्य ने लुङ्का से भगवती सूत्र की एक प्रति लिखवाई। श्री लुङ्का ने भगवती सूत्र में, जङ्घाचारण विद्याचरण मुनि, जो लब्धि द्वारा शास्वत-अशास्वत जिन मन्दिर वन्दन करने गये थे, उनके विषय के ७ पृष्ठ नहीं लिखने की गलती कर दी। इस पर आचार्य महाराज ने भगवती सूत्र की वह प्रति लेने से इन्कार किया। आचार्य महाराज के इन्कार कर देने पर श्रीसङ्घने लुङ्का को लिखवाई के रुपये नहीं दिये। इसी बात को लेकर परस्पर बहुत विवाद बढ़ गया और लुङ्का को उपाश्रय से धक्का देकर निकाल दिया। लुङ्का ने इस अपमान का बदला लेने की

ठान ली और इसी प्रयत्न में रहा कि किसी तरह से इन मूर्ति-पूजकों को अपमानित कर सकूं तो ठीक हो। इसी दृष्टि से उसने मूर्ति-पूजकों के माने हुये ४५ सूत्रों में से केवल ३२ सूत्रों के मूल पाठ को मान्य रखकर बाकी के १३ सूत्रों में स्वार्थी लोगों के कथन प्रक्षेप किये हुये हैं, कहकर अमान्य ठहराया। कारण इन १३ सूत्रों में मूर्ति पूजा के पक्ष में अनेक स्थानों मेंस्पष्ट तौर पर विधान दिया हुआ है और पूजा को आत्म-कल्याण का उत्तम साधन बताया गया है। इसीलिये ३२ सूत्रों पर लिखे हुये भद्रबाहु स्वामी, मलयगिरि, शिलङ्काचार्य, अभयदेव सूरि आदि अनेक आचार्यों के भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, अवचूरि, टीका, निर्युक्ति आदि के विषय मे भी यह कह दिया कि जो बातें इनमें बताई हुई हमारे विचारों के अनकूल नहीं है वे हमें मान्य नहीं है। लुङ्का ने अपने प्रचार में अथक परिश्रम करके लुंपक मत के नाम से अपना समप्रदाय चालू कर दिया। इस लुंपक मत में से विक्रम सम्वत् १७०६ में लवजी नाम के एक साधु ने अपना टोला कायम किया जिसके बढ़ते बढ़ते २२ टोले बन गये। वही बाईस टोले अथवा स्थानकवासियों के नाम से इस समय प्रसिद्ध हैं। इन बाईसटोलों में से एक टोला श्री रघुनाथ जी नाम के आचार्य का था जिसमें से विक्रम सम्वत् १८१८ में श्री भीखनजी ने अलग होकर तेरापंथ नाम का अपना मत चालू किया। तेरापंथी भी स्थानकवासियों की तरह ३२ सूत्रों के केवल मूल पाठ को

ही मानते हैं, परन्तु इन दोनों के विचारों और प्रचार में रात-दिन का अन्तर है। मूर्तिपूजक और स्थानकवासियों के विचारों में केवल मूर्ति-पूजा के विषय को छोड़ कर दान-दया आदि विषयों में पूर्ण सादृश्य है। तेरापंथ मत स्थानकवासियों में से निकला हुआ है इसलिये मूर्ति-पूजा के विषय में इनके विचार स्थानकवासियों जैसे ही हैं परन्तु दान, दया के विषय में सर्वथा भिन्न है। स्थानकवासी भूख-प्यास से मरते प्राणी को सामाजिक व्यक्ति द्वारा अन्न-पानी की सहायता से बचाने में पुण्य मानते है और तेरापंथी ऐसा करने में एकान्त पाप मानते हैं। स्थानकवासी सार्वजनिक लाभ के कामों को निस्वार्थ भाव से करनें में सामाजिक व्यक्ति को पुण्य हुआ मानते हैं और तेरापंथी एकान्त पाप मानते है। स्थानकवासी श्रावक माता-पिता की सेवा शुश्रूषा करने में पुण्य मानते है और तेरापंथी एकान्त पाप मानते हैं।

बत्तीस सूत्रों के मूल पाठ को अक्षर अक्षर सत्य मानने में तीनों का एक मत है, ऐसा कहा जा सकता है। सूत्र ८४ को छोड़कर ४५ माने गये और ४५ मे से १३ में स्वार्थी लोगों के प्रक्षेप का दोष लगा कर ३२ माने जाने लगे। भविष्य में और भी कुछ में किसी तरह का दोष लागू किया जाकर कम संख्या में माने जाने लगें, ऐसा भी हो सकता है। मेरे लेखों के विषय में एक विद्वान एवं शास्त्रज्ञ मुनि महाराज से बातचीत

हुई तो कहने लगे कि जो ११ अंग सूत्र हैं उनमें भगवान का शुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान है, बाकी के सूत्रों की सब बातें विश्वास योग्य नहीं भी हो सकती हैं। मैंने जब अंग सूत्रों की असत्य प्रतीत होनेवाली बातें उनके सन्मुख रखी तो चुप हो गये और कहने लगे कि सूत्रों पर श्रद्धा रखना ही उचित है। मैंने कहा—महाराज, भगवान खुद फरमा रहे हैं कि असत्य को सत्य समझना मिथ्यात्व है तब प्रत्यक्ष में जो बात असत्य है उस पर आप श्रद्धा रखने को कैसे कह सकते हैं, तो कुछ उत्तर नहीं मिला।

११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ४ छेद, १ आवश्यक, इस प्रकार ३२ सूत्र कहलाते हैं, जिनके नाम निम्न लिखित हैं—

ग्यारह अङ्ग	बारह उपाङ्ग	चार मूल
१ आचाराङ्ग	१२ उववाई	२४ दसवैकालिक
२ सुयगडाङ्ग	१३ रायप्रश्रेणी	२५ उत्तराध्ययन
३ ठाणाङ्ग	१४ जीवाभिगम	२६ नन्दी
४ सामवायाङ्ग	१५ पन्नवणा	२७ अनुयोगद्वार
५ भगवती	१६ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	**चार छेद**
६ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग	१७ सूर्यप्रज्ञप्ति	२८ बृहत्कल्प
७ उपासकदशाङ्ग	१८ चन्द्रप्रज्ञप्ति	२९ व्यवहार
८ अन्तगढ़ दशाङ्ग	१९ पुप्फिया	३० दशाश्रुतस्कन्ध
९ अनुत्तरोववाई	२० पुप्फचूलिया	३१ निशिथ
१० प्रश्न व्याकरण	२१ कप्पिया	**आवश्यक**
११ विपाक	२२ कप्पवडंसिया	३२ आवश्यक सूत्र
	२३ वन्हि दशा	

ऊपर लिखे बत्तीस सूत्रों में जो ११ अङ्ग सूत्र बताये गये हैं, वे १२ थे परन्तु दृष्टिवाद नाम का बारहवां अङ्गसूत्र लोप हो गया, बाकी के ११ अङ्गसूत्र यहां भरत क्षेत्र में माने जा रहे हैं। इन बारह अङ्गसूत्रों के बिषय में यह लिखा है कि महाविदेह क्षेत्र में जहां कि अरिहन्त भगवन्त विराज रहे हैं, वहां इन ही नामों के बारह अङ्गसूत्र हैं, जो शास्वत हैं यानी अनादिकाल से हैं :और अनन्त काल तक रहेंगे। भरत क्षेत्र में यहां पर जो ११ अङ्गसूत्र इस समय है, वे इन ही के अंश मात्र है और शास्वत नहीं हैं। महाविदेह क्षेत्र के शास्वत द्वादशांगी के रचनाक्रम और विस्तारक्रम के विषय में यहां के समवायाँग सूत्र और नन्दी मूत्र दोनों में अलग अलग वर्णन किया हुआ है, जिस में परस्पर भिन्नता है। शास्वत द्वादशांगी के विषय में एक सूत्र में कुछ ही लिखा हुआ है और दूसरे में कुछ ही, यह खास बिचारने की वात है। दोनों सूत्रों के वर्णन में जब परस्पर भिन्नता है तो कौन से सूत्र का बर्णन सचा माना जाय और कौन से का मिथ्या ? विस्तार-क्रम को सात प्रकार के बोलों से बताया है, जो इस प्रकार है—१ परितावाचना २ अनुयोगद्वार ३ वेड़ा ४ श्लोक ५ नियुक्ति ६ प्रतिश्रुति ७ संग्रहणी। रचनाक्रम को ६ प्रकार के बोलों से बताया है, जो इस प्रकार हैं —१ श्रुतस्कन्ध २ अध्ययन ३ वर्ग ४ उद्देशा ५ समउद्देशा ६ पद संख्या। निम्नलिखित शास्वत अङ्गसूत्रों के विषय में सामवायाङ्ग और नन्दी दोनों सूत्रों के

बताने में जो परस्पर भिन्नता है, वह इस प्रकार है—

(१) आचाराङ्ग सूत्र के बावत नन्दीसूत्र में विस्तार-क्रम के सात बोल बताये हैं, परन्तु समवायाङ्ग में केवल ६ बोल बताये हैं। संख्याता संग्रहणी नहीं बताया।

(२) सूएगडाङ्ग सूत्र के बावत नन्दी सूत्र मे विस्तारक्रम में केवल ५ बोल बताये हैं और सामवायाङ्ग में ६ बोल। संख्याता वेढ़ा का होना अधिक बतलाया है

(३) ठाणाङ्ग सूत्र के बावत नन्दी में विस्तारक्रम के ७ बोल बताये हैं और सामवायाङ्ग सूत्र में ६ बोल। निर्युक्ति का होना नहीं बतलाया।

(४) समवायाङ्ग सूत्र के बावत नन्दी में संख्याता संग्रहणी का होना नहीं बताया, जो समवायाङ्ग में बताया है और सामवायाङ्ग में संख्याता निर्युक्ति का होना नहीं बताया, जो नन्दी में बताया है।

(५) भगवती सूत्र के बावत नन्दीसूत्र मे रचनाक्रम मे २८८००० पद संख्या बताई है जिसको समवायांग सूत्र में केवल ८४००० पद संखया बताई है। अंगसूत्रों के रचनाक्रममे पहिले आचारंग सूत्र की पद संख्या से दो गुणी बताई है, जैसे आचारंग की १८००० सूयगड़ांग की ३६०००, ठाणांग की ७२०००, सामबायांग की १४४०००, भगवती की २८८०००, और इसी तरह दो गुणे करते हुए बाकी के सर्व अङ्गसूत्रों की

पद्-संख्या बताई है। भगवती के लिये नन्दी सूत्र में २८८००० की पद्-संख्या दो गुणा क्रम के अनुसार ठीक है, मगर समवायांग में ८४००० किस कारण से बताई है, यह पता नहीं। २८८००० और ८४००० में बहुत बड़ा अन्तर है।

(६) ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के बाबत नन्दी सूत्र में ३½ करोड़ कथा का होना बताया है और समवायांग सूत्र में ३½ करोड़ आख्याइका होना बताया है जब कि इस स्थान पर दोनों ही शब्द अपना अपना अर्थ रूढ़ शास्त्रों के अनुसार रखते हैं। यह साढ़े तीन करोड़ की गणना भी सर्वथा अयुक्त है। कारण, सूत्र में कहा है कि धर्म-कथा के १० वर्ग हैं और एक वर्ग की पाँच पाँच सौ आख्याइका है, एक एक आख्याइका में पाँच पाँच सौ उपाख्याइका है, एक एक उपाख्याइका में पाँच पाँच सौ आख्याइका-उपाख्याइका है। इस प्रकार गुणा करने से यह संख्या ३½ करोड़ से बहुत अधिक होकर यह गणना अयुक्त ठहरती है। नन्दीसूत्र में रचनाक्रम के १९ उद्देशा और सामवायांग में २९ उद्देशा तथा नन्दी सूत्र में १९ सम-उद्देशा और समवायाग में २९ समउद्देशा बताये हैं।

(७) उपासक दशाग सूत्र के बाबत नन्दी और समवायांग के बताने मे किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

(८) अन्तगढ़ दशांग सूत्र में अध्ययन के विषय में कुछ नहीं कहा, जब कि समवायांग सूत्र में १० अध्ययन बताये हैं।

नन्दीसूत्र में ८ वर्ग और समवायांग में ७ वर्ग बताये हैं। नन्दी में ८ उद्देशा और समवायाग १० उद्देशा। नन्दी में ८ सम-उद्देशा और समवायाग में १० समउद्देशा बताये है।

(९) अनुतरोववाई सूत्र के बाबत नन्दी सूत्र मे विस्तार-क्रम के ६ बोल बताये हैं और समवायांग मे ७ बोल। संग्रहणी का होना अधिक बताया है नन्दी सूत्र में अध्ययन के विषय मे कुछ नहीं कहा है जहा समवायाग मे १० अध्ययन बताये हैं। नन्दी सूत्र में ३ उद्देशा और समवायाग मे १० उद्देशा। नन्दी में ३ समउद्देशा और समवायांग मे १० समउद्देशा बताये हैं।

(१०) प्रश्न व्याकरण सूत्र के बाबत नन्दी सूत्र मे विस्तार-क्रम के ६ बोल बताये हैं जब कि समवायांग मे ७ बोल है। संग्रहणी का होना अधिक बताया है। नन्दी सूत्र में अध्ययन ४५ बताये हैं जब कि समवायाग सूत्र मे अध्ययन के बारे में कुछ नहीं कहा है।

(११) विपाक सूत्र के बाबत नन्दी में श्रुतस्कन्ध बताये है, जब की समवायाग मे कुछ नही कहा है। समवायांग सूत्र मे एक स्थान में २० अध्ययन बताये हैं और दूसरे स्थान में ५५ व समवायांग मे १५० अध्ययन बताये है।

(१२) दृष्टिवाद अङ्गसूत्र के बाबत नन्दी और समवायांग के बताने मे विरोध नहीं है। सब प्रकार के भावों का होना कहा गया है।

महाविदेह क्षेत्रस्थित १२ अङ्गसूत्रों के विस्तार-क्रम और रचना-क्रम के बताने में समवायाङ्ग सूत्र और नन्दी सूत्र के दरमियान जो अन्तर है, वह ऊपर बताया जा चुका है। सर्वज्ञों के बचनो में जहां एक अक्षर भी इधर-उधर होने की गुञ्जाइश नहीं और निश्चय पूर्वक अक्षर-अक्षर सत्य होने चाहिये, वहाँ उनके बचनों में इस प्रकार एक ही बात के विषय में ऐक सूत्र में कुछ ही और दूसरे में कुछ ही कहा हुआ हो तो सहज ही यह कहा जा सकता है कि ऐसे वचन सर्वज्ञ वचन नहीं हैं और यह सूत्र सर्वज्ञ-भाषित नहीं हैं। विद्वान शास्त्रज्ञों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि इस विषय का यदि कोई समाधान हो सके तो कृपा करके 'तरुण जैन' द्वारा या मेरे से सीधे पत्र-व्यवहार द्वारा समाधान करे। एक ही बात के विषय में एक सूत्र में कुछ ही लिखा हुआ है और दूसरे में कुछ ही। ऐसे सैकड़ों प्रसङ्ग सूत्रों में मिलते हैं जिन में से टीका-कारों ने कुछ का समधान करने का प्रयास भी किया है। बहुत थोड़ों का ठीक समाधान हुआ है, बाकी के लिये यही कहा जा सकता है कि केवल लीपा-पोती की गई है।

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा, कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली 'विवरण-पत्रिका' "के गत अप्रेल के अङ्क में" आधुनिक विज्ञान की नई खोज" शीर्षक एक लेख मैंने देखा है जिस में सम्पादक महोदय ने लिखा है कि "चाहे वैज्ञानिक कितने ही वडे क्यों न हों, वे दो ज्ञान के धारक हैं उनका ज्ञान पूर्ण नहीं हो

सकता··· ·· ·····केवलज्ञानियों ने दिव्य दृष्टि से जो बात देखी है, उसके साथ साधारण मति-श्रुति अज्ञान के धारक व्यक्तियों के परिवर्तन-शील मत की तुलना करना अयुक्त है। ज्ञानियों के वचनों में शङ्का करना सम्यकत्व का दूषण है। मति-श्रुति अज्ञान के धारक वैज्ञानिक लोग ज्यों ज्यों नई चीज को देखते हैं, प्रकाश करते हैं, उनकी खोज केवलज्ञानी के ज्ञान की बराबरी कैसे करेगी?" ऐसा कहकर सम्पादक महोदय ने Sir James Jeans के Royal Institute में हाल ही में दिये हुये एक भाषण का कुछ उद्धरण देकर एक यन्त्र द्वारा ग्रहों के ज्योति विकीर्ण से वैज्ञानिकों की पूर्व निश्चित धारणा से अभी की धारणा बदले जाने का हवाला देते हुए विज्ञान के कथन को अविश्वास योग्य ठहराने का प्रयास किया है। विवरण-पत्रिका के गत जुलाई के अङ्क में भी उन्होंने विज्ञान पर से लोगों की श्रद्धा हटाने की चेष्टा की थी और इस लेख में भी विज्ञान को मति-श्रुति अज्ञान के भेदों में लेते हुये वैज्ञानिक लोगों को अज्ञान के धारक बताकर उनके कथन को अविश्वास-योग्य बताने का प्रयास किया गया है। यदि मेरे लेखों को दृष्टिगत करके विज्ञान को अविश्वास-योग्य ठहराने का प्रयास किया जा रहा हो, तब तो मैं कहूंगा कि कुम्हार कुम्हारी वाले मसले की तरह गधे के कान ऐंठने का सा कदम नजर आ रहा है। विज्ञान का यदि कोई अपराध है तो केवल इतना ही है कि वह सर्वज्ञता का मिथ्या दावा पेश नहीं करता। इन्सान को बुद्धि

पूर्वक विचारने का मौका देता है और अन्वेषण का रास्ता खुला रखता है। उक्त सम्पादक महोदय से मेरा विनम्र अनुरोध है कि विज्ञान को अविश्वास योग्य ठहराने का प्रयास न करके मेरे प्रश्नों के समाधान करने की चेष्टा करें जिस में सफलता होने पर सर्वज्ञ वचनों पर स्वयमेव ही श्रद्धा होनी निश्चित है।

'तरुण जैन' अगस्त सन् १६४२ ई०

टिप्पणी: लेखक का सुझाव

इस लेखमाला के १५ लेख प्रकाशित हो चुके जिनमें जैन शास्त्रों की असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होनेवाली बातों के विषय में शास्त्रज्ञों एवम् विद्वानों के समक्ष समाधान की आशा से मैंने प्रश्न रखे थे। किसी प्रकार का समाधान न मिलने पर गत मार्च के लेख में चुनौती तक दी मगर फिर भी किसी सज्जन ने समाधान करने का प्रयास तक नहीं किया। 'तरुण जैन' को प्रति मास हजारों जैनी पढ़ते हैं। यह तो हो ही नहीं सकता कि इन पढ़नेवालों में सब ही शास्त्रों के अजान और लेखों के तर्क को न समझने वाले ही हैं। जहाँ तक मुझे मालूम है हमारे थली प्रान्त के बहुत से विद्वान सन्त मुनिराज इन लेखों को बड़े ध्यान से पढ़ते हैं, मगर सब मौन हैं। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि यह बातें वास्तव मे जैसी मैंने लिखी हैं, वेसी ही मान ली गई है। जब तक मेरे लेख भूगोल-खगोल की प्रत्यक्ष प्रमाणित होनेवाली बातों के विषय में निकलते रहे तब तक यह शास्त्रज्ञ जन सर्व-साधारण को यह कहते रहे कि भूगोल-खगोल की बातें जैन शास्त्रों की लिखी हुई बातों से मेल नहीं खातीं यानी सत्य प्रमाणित नहीं होती; बहुत से शास्त्र 'लोप' हो गये शायद उनमें इनका सही वर्णन होगा। मगर जब से मैंने गणित में असत्य प्रमाणित होने वाली सर्वज्ञों

की बातें सामने रखी हैं, तब से जो सज्जन गणना करना जानते हैं, उनके हृदय में तो पूर्ण बिश्वास होगया है कि वर्तमान शास्त्र न तो सर्वज्ञों के बचन ही हैं और न अक्षर अक्षर सत्य ही। कई विद्वान सज्जनों ने तो इन विषयों को अच्छी तरह समझ कर मेरे समक्ष यह भी स्वीकार कर लिया है कि वास्तव में वर्तमान शास्त्र सर्वज्ञ-प्रणीत और अक्षर-अक्षर सत्य कदापि नहीं हो सकते।

जिन शास्त्रों से यह सिद्धान्त निकल रहे हों कि भूख प्यास से मरते हुए को अन्न पानी की सहायता से बचाना, शिक्षा-प्रचार करना, माता-पिता-पति आदि की सेवा शुश्रूषा करना, जलते हुए मकान के बन्द द्वारों को खोल कर अन्दर के मनुष्यों को बचा देना, बाढ़ भूकम्प आदि दुर्घटनाओं से पीड़ित बिपत्ति ग्रस्त लोगों की सहायता करना आदि सार्वजनिक लाभ के परोपकारी कार्यों को निस्वार्थ भाव से करने पर भी सामाजिक व्यक्ति को एकान्त पाप और अधर्म होता है, तो ऐसे शास्त्रों को अक्षर-अक्षर सत्य मान कर अमल में लाने का परिणाम मानव समाज के लिये अत्यन्त घातक है। यह तो मानी हुई बात है कि मानव समाज परस्पर के सहयोग पर जिन्दा है—इसलिये सब का सबके प्रति सहयोग रहना आवश्यक कर्तव्य है। मेरे लेखों में बताई हुई शास्त्रों की असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव बातों द्वारा जब कि यह स्पष्ट प्रमाणित हो रहा है कि न तो यह शास्त्र सर्वज्ञ-प्रणीत हैं और

न अक्षर-अक्षर सत्य ही, ऐसी दशा में इन शास्त्रों को सर्वज्ञ वचन और अक्षर-अक्षर सत्य मानने वालों का यह कर्तव्य हो जाता है कि या तो इन लेखों की बातों का उचित समाधान करके अक्षर-अक्षर सत्य को प्रमाणित करें या मानव-समाज के परोपकारी और सार्वजनिक लाभ के कामों को निस्वार्थ भाव से करने वाले को एकान्त पाप और अधर्म होता है, ऐसा कहने के लिये शास्त्रों का आधार छोड़ कर ऐसे घातक सिद्धान्तों का प्रचार न करें, कारण उनकी दृष्टि में ऐसे सत्कार्यों के करने में यदि इन शास्त्रों से एकान्त पाप होने का अर्थ निकलता भी हो तो, असत्य मान ले। सार्वजनिक लाभ के परोपकारी कामों को निस्वार्थ भाव से करने में धर्म न मान कर यदि पुण्य का होना भी मान लिया जाय तो भी मानव-समाज के लिये इतना अनिष्ट नहीं होता। कारण पुण्य के लोभ में इन सब कामों के करने की मनुष्य की प्रवृत्ति अवश्य बनी रहती है मगर एकान्त पाप मान लेने पर तो कौन ऐसा अज्ञानी और-ना-समझ होगा जो समझ-बूझ कर अपने समय, शक्ति और धन की व्यर्थ हानि कर भी एकान्त पाप से अपने आपको खामखा दुःखों के गर्त में डालेगा। जिस काम के करने में अपना खुद का तनिक भी स्वार्थ नहीं, किसी प्रकार का निजी लाभ नहीं, वह भूल कर भी ऐसा किस लिये करेगा। उसकी भावना तो यही रहेगी कि दूसरा कोई कष्ट पाता है, तो उसके कर्मों का भोग वह भोगे। मैं बीच में पड़ कर व्यर्थ ही

एकान्त पाप की गठडी किस लिये सिर पर लं जिसके फल स्वरूप मुझे निकेवल दुःखों के गर्त में पड़ना पड़े।

जैनी लोग धर्म और पुण्यकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि जिस (सम्बर निर्जरा की) क्रिया के करने से निकेवल मोक्ष-प्राप्ति हो, उसे धर्म कहते हैं और जिस कार्य के करने में शुभ कर्मों का बन्ध हो वह पुण्य है। शुभ कर्मों के बन्ध होने का परिणाम यह होता है कि नाना प्रकार के ऐहिक सुखों की प्राप्ति और मोक्ष-प्राप्ति करने के साधनों की सुगमता और शुभ अवसर प्राप्त होता है।

ऊपर कहे हुए सार्वजनिक लाभ के परोपकारी कार्यों को करने में धर्म न मान कर यदि पुण्य (शुभ कर्मों का बन्ध) होना मान लिया जाय और साधु ऐसे कर्मों को स्वयं अपने तन से न करें तो किसी हद तक माना भी जा सकता है। कारण कर्म-बन्ध होने के कार्यों को करने का साधु के लिये विधान नहीं है, चाहे वे कर्म शुभ हों चाहे अशुभ। साधु ने तो कर्मों को नष्ट करने के लिये ही संयम व्रत आदरे हैं। मगर सद्गृहस्थों के लिये तो शुभ कर्मों के बन्ध होने का कथन समाज-हित के लिये श्रेयस्कर और लाभप्रद ही है। अतः सार्वजनिक लाभ के परोपकारी कामों के करने में एकान्त पाप मानने वाले सज्जनों से मेरा विनम्र विनय है कि ऐसे कामों के करने में आप पुण्य का होना बतलाने लगं (जैसा कि अन्य सब जैनी बतला रहे है) ताकि सामाजिक हितों का भी अनिष्ट

न हो और साधु-जीवन का तथाकथित विधान भी कर्म-बन्धन से विमुक्त बना रहे।

ज्वार-भाटे सम्बन्धी कपोल-कल्पना

इस लेख में जैन शास्त्रों में वर्णित ज्वार-भाटे की कल्पना के विषय मे लिखना है।

ज्वार-भाटे के विषय में भगवान महावीर प्रभु से श्री गौतम स्वामी ने पूछा कि अहो भगवन्! लवण समुद्र का पानी अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को क्यों बढ़ता है और क्यो कम होता है? भगवान ने उत्तर दिया कि हे गौतम! जम्बूदीप के चारों तरफ लवण समुद्र मे ९५-९५ हजार योजन जावें तब वलयमुख, केतुमुख, युव, और ईश्वर नामक कुम्भ के आकार के ४ पाताल कलश चारों दिशाओं में हैं। प्रत्येक पाताल कलश एक लाख योजन की ऊँचाई वाला है जो जल मे डूबा हुआ है। मूल मे दस हजार योजन चौड़ा, मध्य मे एक लाख योजन चौड़ा और ऊपर दस हजार योजन चौड़ा है। इनकी ठीकरी सर्वत्र एक हजार योजन मोटाई की है। इन पाताल कलशों के तीन तीन भाग करने पर एक एक भाग ३३३३३$\frac{1}{3}$ का होता है। नीचे के भाग मे वायु, बीच के भाग मे वायु और जल एक साथ और उपर के भाग मे निकेवल जल है। चारों दिशाओं के इन चार पाताल कलशों के अलावा इनके बीच मे ९-९ पंक्तियां छोटे पाताल कलशों की हैं। प्रत्येक बड़े पाताल कलश के पास

१६७१ छोटे पाताल कलश ६ पंक्तियों में लगे हुए हैं। सब मिला कर ४ बड़े और ७८८४ छोटे पाताल कलश है। प्रत्येक छोटे पाताल कलश का माप इस प्रकार है—एक हजार योजन लम्बा, पानी में डूबा हुआ है। मूल में १०० योजन चौड़ा मध्य में १००० योजन चौड़ा और मुखपर १०० योजन चौड़ा है। इनकी ठीकरी १० योजन मोटाई की है। तीन भाग करने पर इनका प्रत्येक भाग ३३३$\frac{1}{3}$ योजन का होता है जिस में नीचे के भाग में वायु, बीच के भाग में वायु और जल एक साथ और ऊपर के भाग में निकेवल जल है। इन सब पाताल कलशों में नीचे के और बीच के भाग में ऊर्ध्व-गमन स्वभाव वाली वायु उत्पन्न होती हे, हिलती है, चलती है, कम्पित होती है क्षुब्ध होती है और परस्पर सङ्घर्ष होता है तब पानी उपर उछलता है और बढ़ता है। जब नीचे के और बीच के भाग में ऊर्ध्व गमन स्वभाव वाली वायु शान्त हो जाती है, तब पानी नीचा हो जाता है। इस तरह अहोरात्रि में यानी ३० मुहूर्त में दो वक्त वायु उत्पन होती है, तव ज्वार होता है और दो ही वक्त भाटा होता है। यंह है जैन शास्त्रों में ज्वार भाटे का कारण। यह पाताल कलश शास्वत है इस लिये इन के योजनों को २००० कोस के एक योजन के हिसाव से समझना चाहिये।

ज्वार भाटे के विषय में वर्तमान अन्वेषणों से जो प्रमाणित हुआ है, वह इस प्रकार है। समुद्र के जल-तल के ऊपर उठने को ज्वार और नीचे बैठने को भाटा कहते हैं।

प्रत्येक २४ घन्टे ५२ मिनट में दो दो बार समुद्र का जल-तल ऊपर उठता है और दो बार नीचा बैठ जाता है। एक ही समय पर सब स्थानों में ज्वार भाटा नहीं आता—भिन्न भिन्न स्थानों पर ज्वार और भाटे का समय भिन्न भिन्न होता है परन्तु प्रत्येक स्थान पर ज्वार और भाटे के आने का समय पूर्व निश्चित होता है। उसमे अन्तर नहीं पड़ता। ज्वार की लहरे क्रमानुसार पृथ्वी के सब जलमय स्थानों पर पहुंचती है और इस प्रकार ज्वार भाटे का चक्र पृथ्वी की परिक्रमा सी करता रहता है इस चक्र का कभी अन्त नहीं होता। ज्वार भाटे का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। चन्द्रमा पृथ्वी के चारों तरफ २२८७ मील प्रति घन्टे की गति से परिक्रमा करता है। ज्वार भाटे की उत्पत्ति पृथ्वी और चन्द्रमा की पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण शक्ति से होती है। यह आकर्षण शक्ति पदार्थों के द्रव्य की मात्रा के अनुपात में बढ़ती है और उनके बीच की दूरी के वर्ग के अनुपात मे कम होती है पृथ्वी का अधिकांस भाग जलमग्न है पृथ्वी पर जल का एक प्रकार आवरण सा चढ़ा हुआ है। गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण जल का आवरण पृथ्वी पर बंधा सा है, परन्तु चन्द्रमा का आकर्षण उसको अपनी तरफ खींचता है परिणाम यह होता है कि चन्द्रमा के ठीक सामने पड़ने वाले प्रदेश में जहाँ उसका खिचाव सब से अधिक होता है, वहां का जल चन्द्रमा की तरफ खिंचता है और आस-पास के जल-तल से

ऊँचा हो जाता है। चन्द्रमा प्रति २४ घन्टे ५२ मिनिट में पृथ्वी की परिक्रमा करता है अर्थात् जो स्थान आज ७ बजे चन्द्रमा के सामने पड़ेगा वह कल ७ बज कर ५२ मिनिट पर फिर चन्द्रमा के सामने पड़ेगा। ज्वार आने के ठीक ६ घन्टे १३ मिनिट पश्चात् भाटा आता है। ज्वार दो तरह का होता है बृहत ज्वार (Spring tide) और लघु ज्वार (Neap tide)। चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति के अलावा पृथ्वी पर सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का भी प्रभाव पड़ता है। ज्वार भाटे में प्रायः चन्द्रमा की आकर्षण. शक्ति ही प्रधान रहती है परन्तु सूर्य का प्रभाव भी पड़ता है जिन दिनों में सूर्य और चन्द्रमा दोनों पृथ्वी की एक ही दिशा में होते है, उन दिनों मे दोनों की आकर्षण शक्तियों का संयुक्त प्रभाव पड़ता है। फल स्वरूप ज्वार का वेग अधिक हो जाता है और समुद्र का जल अधिक ऊंचा उठता है। यही कारण है कि पूर्णिमा ;और अमावश्या के दिनों मे समुद्र में ऊंचा या बृहत ज्वार (Spring tide) होता है। इसके विपरित शुक्ल और कृष्णाष्टमी को सब से नीचा या लघु ज्वार (Neap tide) होता है इन दिनों सूर्य और चन्द्रमा समकोण की स्थिति मे होते है और दोनों की आकर्षण शक्तियां एक दूसरे के विरुद्ध काम करती हैं। गणना से यह अनुमान हुआ है कि चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति जल को अपनी तरफ ५६ सेन्टीमीटर खिंचती है और सूर्य की आकर्षण-शक्ति

२५ सेन्टीमीटर, कारण सूर्य बहुत दूर है। इस प्रकार वृहत ज्वार के दिनों में ५६+२५=८१ सेन्टीमीटर का खिचाव होता है परन्तु नीचे—लघु ज्वार के दिनों मे ५६—२५=३१ सेन्टी-मीटर का खिचाव रह जाता है। ज्वार भाटे की ऊंचाई-नीचाई अधिकतर समुद्र तट की बनावट और पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य की स्थितियों के उपर निर्भर रहती है।

संसार में सबसे ऊंचा ज्वार अमेरिका के तट पर नोवास्कोशिया में फण्डी की खाडी Bay of Fundy में आता है। यहां पर ज्वार की लहरें लगभग ७० फीट ऊंची हो जाती हैं। जल की गहराई और स्थल की दूरी का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। जहां जल बहुत अधिक गहरा होता है वहा ज्वार की लहरें बड़ी तेजी से आगे बढ़ती है—जैसे एटलाण्टिक महासागर की विषूवत् रेखा के समीपवाले स्थानों मे ज्वार की बाढ ५०० मील प्रति घन्टे के हिसाब से आगे बढती है। पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की तरफ घूमती है, इसलिये चन्द्रमा पूर्व से पश्चिम की तरफ चलता मालूम होता है जहा जल की अधिकता है, वहा चन्द्रमा का खींचाव अधिक प्रत्यक्ष मालूम होता है। यही कारण है कि दक्षिणी गोलार्द्ध के इस जल खण्ड में जहा केवल आस्ट्रेलिया ही विशाल स्थल खण्ड है, चन्द्रमा का विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है और जल का वेग पूर्व से पश्चिम की तरफ बहता हुआ प्रत्यक्ष दिखाई देता है। जब ज्वार किसी नदी की धारा से टकराता है तो नदी के

ऊपर जल की धार उलटी बढ़ती है। इसकी ऊंचाई कभी कभी बहुत अधिक हो जाती है। ज्वार के वेग से चढ़ा हुआ जल नदी के प्रवाह के कारण ऊपर चढ़ने से रुक जाता है और एक प्रकार से जल की दीवार सी खड़ी हो जाती है। पानी की इसी ऊंची दीवार को 'बाण' (Tidal Bore) कहते हैं।

ज्वार भाटे का जिनको प्रत्यक्ष अनुभव है, वे अनुमान कर सकते है कि इस विषय की जैन शास्त्रों में की हुई "बूझ-बुजागरी" कल्पना कहां तक सत्य है? समुद्र में पानी ऊपर उठता और नीचे बैठ जाता है, यह देख कर सर्वज्ञों ने सोचा कि सर्वज्ञता के नाते इस मसले का भी तो कोई समाधान करना चाहिये। पृथ्वी और चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण का तो पता था नहीं अतः उन्होंने सोचा कि यदि इसका कोई कारण हो सकता है तो समुद्र के भीतर ही हो सकता है और वह भी कहीं वायु के वेग का ही। बस फौरन बड़े बड़े पाताल कलशों की कल्पना कर डाली और कलशों में वायु भर दी। कलशों के तीन भाग करके नीचे के भाग में वायु और उसके उपर (बीच) के भाग में वायु और जल एक साथ और उपर के भाग में केवल जल बता दिया— क्योंकि उन्हें ऊपर के जल को ही तो बढ़ता हुआ और कम होता हुआ दर्शाना था। मगर यह नहीं सोचा कि जल वायु से वजन में बहुत अधिक भारी होने के कारण वायु के

ऊपर वह ठहर नहीं सकता यानी कलशों में जल नीचे बैठ जायगा और वायु ऊपर उठ जायगी और कलशों के मुख खुले रहने के कारण वायु निकल कर बाहर चली जायगी। फिर किस तरह से तो ज्वार होगा और किस तरह से भाटा। यह एक सीधी सी बात थी, मगर सर्वज्ञों ने अपने तर्क को कतई तकलीफ नहीं दी। सोच लिया सर्वज्ञता की छाप मार देने पर फिर कोई सवाल उठ ही नहीं सकेगा, तो किस लिये ऊहापोह की जाय? मनुष्य मात्र जानता है कि किसी खुले मुँह के पात्र में नीचे वायु और ऊपर जल कभी नहीं ठहर सकता मगर इस सर्वज्ञता की छाप ने भक्तों के तर्क और आखों पर परदा डाल रखा है। शास्त्रों के रचने वालों ने भगवान के नाम पर व्यर्थ की असत्य कल्पनाएँ करके प्रभु महावीर के पवित्र जीवन पर नाना तरह के अशिष्ट आवरण चढ़ा दिये। शास्त्रों में यदि एकाध बात ही कल्पित होती और इनके आधार पर ऊपर कथित समाज-घातक सिद्धान्त न फैलते तो इन "बृझबुजागरी" कल्पनाओं को सत्य की कसौटी पर कसने की कोई आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती, मगर जब कि इनमें असत्य, अस्वाभाविक औरअसम्भव प्रतीत होनेवाली बातें हजारों की संख्या में हैं (जिन्हें यदि इस प्रकार लेखों द्वारा बताई जाये तो बीसों बर्षों तक लेख चालू रखने पड़ें) इनके रहस्य को प्रकाश में लाना नितान्त आवश्यक है।

'तेरापंथी युवक संघ का बुलेटिन नं० २' जून सन् १६४४ ई०

जैन सूत्रों में मांस का विधान

पिछले किसी एक लेख में मैंने यह कहा था कि एक ही बात के विषय मे एक सूत्र में कुछ ही लिखा हुआ है तो दूसरे में कुछ ही। यहां तक है कि परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध तक लिखा हुआ है। इस प्रकार की परस्पर वे-मेल वातें जैन शास्त्रों में प्रायः सैंकड़ों की संख्या में हैं और असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होने वाली बातों के विपय मे तो यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि वे हजारों की संख्या में हैं। ऐसी अवस्था में शास्त्रों को भगवान के वचन कह कर अक्षर-अक्षर सत्य कहना सर्वज्ञता के नाम का उपहास करना है। वर्तमान जैन सूत्रों की त्रुटि पूर्ण रचना और सन्दिग्ध वचनों के कारण जैन धर्मानुयाइयों के एक ही सूत्रों को मानते हुवे अनेक फिरके होते गये और होते जा रहे हैं। विक्रम सम्वत ५२३ के लगभग इन सूत्रों की रचना हुई थी। उस समय से आज तक इन सूत्र वचनों का भिन्न २ अर्थ निकलने के आधार पर सैंकडों नये नये मत चालू होते रहे हैं और परस्पर एक दूसरे से इन वचनों को लेकर लड़ते झगड़ते रहे हैं। सूत्रों की रचना के कुछ ही समय पश्चात् बड़गच्छ की स्थापना हुई इसके पश्चात् विक्रम संवत् ११३६ में षटकल्याणक मत १२०४ में खरतर गच्छ १२१३ में आंचलिक मत १२३६ में सार्द्ध पौर्णिमेयक मत १२५० में आगमिक मत

१२८५ में तपागच्छ १५३१ मे लुंका गच्छ १५६२ में कटुक मत १५७० में विजागच्छ १५७२ मे पाय चन्द्रसूरि गच्छ १७०६ मे लवजी का मत (जिसके स्थानकवासी हुवे है) और १८१६ मे तेरापंथ मत चालू हुवे। इनके अतिरिक्त और भी अनेक मत चालू हुवे हैं। आज भी हम बराबर देख रहे है कि सूत्रों के इन सन्दिग्ध वचनों में उलझकर प्रति वर्ष सैकडों साधु अपने २ गच्छ और मतों से निकल पड़ते है और आवारा भटक कर अपनी जिन्दगी बरबाद करते हुवे मर मिटते है। यह है इन सूत्रों के सन्दिग्ध वचनों का कटु फल। इन ही सन्दिग्ध वचनों के आधार पर भगवान महावीर के सपूत (ये साधु) फिरका बन्दी में पड़ कर परस्पर लड़ रहे हैं। एक दूसरे को बुरा बताने मे तनिक भी नहीं अघाते। श्वेताम्बर जैन के इस समय मुख्य मुख्य तीन फिरके हैं। किसी के पास चले जाइये बाकी के दो फिरकों की निन्दा करते देख कर आप ऊब जायेंगे। इन सन्दिग्ध वचनों के आधार पर कोई भगवान की प्रतिमा को सन्मान करना दोष बता रहा है तो कोई माता पिता, पति की सेवा सुश्रूषा करना, विपत्ती में पड़े हुवे की सहायता करना, शिक्षा प्रचार आदि ससार के जितने भी उपकार के सत्कार्य हैं सब को निस्वार्थ भाव से करने पर भी एकान्त पाप बता रहा है। इसका कारण किसी व्यक्ति विशेष का निजू स्वार्थ नहीं है और न किसी की द्वेष बुद्धि से ऐसा हो रहा है परन्तु इसका कारण एक मात्र इन सूत्रों के सन्दिग्ध वचन और इनकी त्रुटि

पूर्ण रचना मात्र है। सूत्रों की त्रुटि पूर्ण रचना के विषय में भिन्न भिन्न नुकते (Points) को लेकर यदि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के फिरकों की मान्यता में जो परस्पर अन्तर है, उसे स्पष्ट किया जाय तो इस छोटे से लेख में सम्भव नहीं, इसके लिये तो एक स्वतन्त्रपुस्तक की रचना करनी पड़ेगी परन्तु त्रुटि पूर्ण रचना के विषय की कुछ आम (General) बातें विचारने योग्य हैं।

भगवती सूत्र को वहुत बड़ा दिखाने के लिये उसमें ३६००० प्रश्नों का कथन किया गया है। एक ही प्रश्न को केवल प्रश्नों की संख्या बढ़ाने के विचार से वार २ कई स्थानों में रखा गया है और आप देखेंगे कि सूत्रों की संख्या और उनका कलेवर बढ़ाने के लिये ठीक वैसे ही वहुत से वल्कि वे के वे ही प्रशन जो भगवती में हैं वही जीबाभिगम में मौजूद हैं वही पन्नवणा में और यही जम्बूद्वीप पन्नति आदि मे। इस प्रकार परस्पर एक दूसरे सूत्र में वे के वे ही प्रश्न जोड़-जाड़ कर सूत्रों की संख्या और कलेवर बढ़ाने का प्रयास किया गया है। सूत्रों को देखने वाले भली प्रकार जानते है कि सब सूत्रों में पुनरावृत्ति भरी पड़ी है। सब स्थानों में यह नजर आ रहा है मानो केवल कलेवर बढ़ाने की भावना से एक ही वात का वरावर अनेक वार प्रयोग किया गया है।

संसार के सामने Volume वढ़ा कर दिखाने की भावना उस समय और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है जिस समय हम

चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति पर दृष्टि डालते हैं। चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति दोनों भिन्न २ दो सूत्र माने गये हैं। बारह उपाङ्गों में ज्ञाता धर्म कथांग का एक छट्ठा उपाङ्ग और दूसरा सातवां उपांग माना गया है। परन्तु आप इन सूत्रों को पढ़ जाइये दोनों सूत्र अक्षरसः एक ही हैं। इन दोनों में कुछ भी भिन्नता नहीं फिर इनका भिन्न २ दो नाम और एक को छट्ठा उपाग और दूसरे को सातवां उपाग किस लिये बताया गया है इसका कारण समझ मे नहीं आता।

इन सूत्रों की बातें प्रत्यक्ष और गणना (Mathematically) में असत्य प्रमाणित हो रही है यह एक जुदी बात है। परन्तु सवाल तो यह है कि जब कि यह दोनों सूत्र हरफ ब हरफ एक ही है तो संसार के सामने दो बता कर दिखाने का भी तो कोई मकसद होना चाहिये।

दृष्टिवाद नाम का बारहवां अंग मय १४ पूर्व और कई वे सूत्र जिनके पठन मात्र से सेवा मे देवता हाजिर होना अनिवार्य था का होना बता कर साथ ही उनका विच्छेद जाना या लोप हो जाना कहा गया है। चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति दोनों सूत्र हरफ ब हरफ एक होते भी दो बताने के कथन पर गौर करने से इस कथन पर पूरा शक पैदा हो जाता है कि आया यह चवदह पूर्व और पठन मात्र से सेवा में देव हाजिर करने वाले ग्रन्थ थे या संख्या और महत्व बढ़ाने के लिये कोरी कल्पना मात्र ही है।

यदि यह चवदह पूर्व और पठन मात्र से सेवा में देव हाजिर करने वाले सूत्र वास्तव में ही होते तो ऐसे उपयोगी रत्नों को लोप होने क्यों देते जबकि भगवान महावीर के समय के ताड़-पत्रों पर लिखे हुवे अनेक ग्रंथ मिल रहे है। फिर इनके लिये ही न लिखने की कौन सी कानूनी निषेधाज्ञा लागू पड़ती थी। विचारने की बात है कि लिखने की कला रहते हुवे ऐसा कौन ना समझ और अकर्मण्य होगा जो ऐसी उपयोगी वस्तु को केवल लिखने के आलस्य से लोप होने देगा।

दन्त कथा है कि आचार्य महाराज के कान में सूंठ का टुकडा रखा हुवा था जो बिस्मृत हो गया और प्रतिक्रमण की पलेवना के समय उस सूठ के टुकड़े को कान में भूला जान कर विचार किया कि पंचम काल के प्रभाव से दिन प्रति दिन स्मरण शक्ति बिसरती जा रही है अतः भगवान के ज्ञान को लिपिबद्ध कर देना आवश्यक समझ कर सूत्र लिखवाये। जो लोप हो गया उनके लिये भी यही कथन है कि एक साथ लोप नहीं हुआ था परन्तु सनैः सनैः लोप हुवा था। पहले १४ पूर्वधर थे पश्चात् १० पूर्वधर हुवे। होते होते जिस समय सूत्र लिखे गये उस समय केवल आध (½) पूर्व का ज्ञान शेष रह गया था। आश्चर्य तो इस बात का है कि १४ पूर्व में से किंचित यानी आधा पूर्व घट कर जिस समय १३½ पूर्व रहे उसी समय आलस्य त्याग कर चेत जाना चाहिये था और बचे हुवे १३½ पूर्वों को और जिनके पठन मात्र से देवता हाजिर हों—ऐसे चमत्कार पूर्ण सूत्रों

को तो लिपि बद्ध करा देना चाहिये था, जो नहीं किया ; वरना इतनी बड़ी सम्पदा (!) से संसार वञ्चित नहीं रहता। भगवान महावीर निर्वाण के ६८० वर्ष पश्चात वर्तमान सूत्र लिखे गये। यद्यपि असल (Original) प्रतियों का आज कहीं पता तक नहीं है परन्तु लिख दिये जाने से यह तो हुवा कि धर्म ग्रन्थों पर मुसलमानी जमाने जैसा खतरनाक समय गुजरने पर भी आज लगभग १४७५ वर्ष व्यतीत होगये परन्तु सूत्र ज्यों के त्यों उपलब्ध हैं। क्या इतने बड़े ज्ञानी पूर्वधरों के ज्ञान मे यह बात नहीं आई कि लिखवा देने का ऐसा शुभ फल होता है। उन्हें चाहिये था कि ऐसे उपयोगी सूत्रों को लिखवाकर भगवान के ज्ञान को स्थायी कर देते। चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति दोनों सूत्र अक्षरसः एक हैं सो तो विचारणीय बात है ही ; परन्तु इनमें की एक बात बड़ी ही आश्चर्यजनक नजर आ रही है। दसम प्राभृत के सतरहवें प्रति प्राभृत में भिन्न भिन्न नक्षत्रों मे भिन्न भिन्न प्रकारके भोजन करके गमन करे तो कार्य की सिद्धि का होना बतलाया है। इस भोजन विधान में ६ जगह भिन्न भिन्न प्रकार के मांसों का भोजन करके जाने पर कार्य सिद्धि का कथन है। यहां हम सूत्र के मूल पाठ को ही दे देते हैं।

ता कहते भोयण आहितेति वदेज्जा ? ता एते सिणं अट्ठावी साए नक्खत्ताणकतियाहिं दहिणा भोच्चा कज्जं साहेति ॥ १ ॥ रोहिणीहि वसभमंसं भोच्चा कज्जं साहेति ॥ २ ॥

मिगसिरेणं मिगमंसं भोच्चा कज्जं साहेति ॥ ३ ॥
अद्दाहिं णवणीएहिं भोच्चा कज्जं साहेति ॥ ४ ॥
पुणवसुणा घरणं भोच्चा ॥ ५ ॥
पुसे खिरेणं भोच्चा ॥ ६ ॥
असिलेसाहिं दीवग मंसेणं भोच्चा ॥ ७ ॥
महाहिं कसारि भोच्चा ॥ ८ ॥
पुव्वा फग्गुणिहिं मेढ़ग मंसेणं भोच्चा ॥ ९ ॥
उत्तरा फग्गुणिहिं णक्खि मंसेणं भोच्चा ॥ १० ॥
हत्थेण वत्थाणियगं भोच्चा ॥ ११ ॥
चित्ताहिं मुगसूएणं भोच्चा ॥ १२ ॥
सातिणा फलाहिं भोच्चा ॥ १३ ॥
विसाहाहिं आतिसिया भोच्चा ॥ १४ ॥
अणुराहाहिं मासाकुरेणं भोच्चा ॥ १५ ॥
जेट्ठाहि कीलट्ठिएण भोच्चा ॥ १६ ॥
मुलेणं मुलग सएणं भोच्चा ॥ १७ ॥
पुव्वासाढाहिं आमलग सारिरेणं भोच्चा ॥ १८ ॥
उत्तराषाढाहि विल्लेहि भोच्चा ॥ १९ ॥
अभियेणं पुप्पेति भोच्चा ॥ २० ॥
सवणेणं खीरेणं भोच्चा ॥ २१ ॥
धणिट्ठाहिं जूसेणं भोच्चा ॥ २२ ॥
सय भिसया तुम्बरातो भोच्चा ॥ २३ ॥
पुव्वा भद्दवयाहिं कारियएहिं भोच्चा ॥ २४ ॥

उत्तरा भद्रवयाहिं वराहमंसं भोच्चा ॥ २५ ॥
रेवतिहिं जलयरमंसं भोच्चा कज्जं साहेति ॥ २६ ॥
अस्सिणिहिं तित्तरमंसं भोच्चा ।
कज्जं साहति अहवा वट्टकमंसं भोच्चा ॥ २७ ॥
भरणीहिं तिल तन्दुलयं भोचा कज्जं साहेति ।
इति दसमस्स सत्तरमं पहुडं सम्मतं ॥

सूत्र के उपर्यूक्त मूल पाठ में ६ स्थानों में भिन्न भिन्न मासों के भोजन करके यात्रा करने पर कार्य सिद्धि का कथन है। रोहिणी नक्षत्र मे वृषभ मांस, मृगसिरा में मृग का मास, अशलेषा में चित्रक मृग का मास, पूर्वाफालगुणी मे मींढे का मास, उत्तराफालगुणी में नखयुक्त पशु का मांस उत्तराभाद्रपद में सूअर का मांस, रेवती में जलचर यानी मच्छादि का मांस और अश्विनी मे तीतर का मांस अथवा वतक के मांस का भोजन का कथन है। श्री गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर में भगवान महावीर ने यह फरमाया है। समझ में नहीं आता कि जैन धर्म के प्रवर्त्तक, अहिंसा के अवतार, जिन भगवान महावीर ने जनसमुदाय को सुक्ष्मातिसुक्ष्म अहिंसा पालन करने पर अत्यधिक जोर दिया है उन्होंने इस प्रकार का कथन किस आधार पर फरमाया है। यदि यह कार्य सिद्धि इस प्रकार वास्तव मे होती तोभी यह बहाना निकल सकता था कि वस्तु स्थिति जैसी होती है वेसा कथन सर्वज्ञ करते हैं परन्तु बात ऐसी नहीं है। किसी मास या धान्यादि वस्तु विशेष का

भोजन करके गमन करने पर ही यदि कार्य की सिद्धि हो जाती होती तो आजतक किसी भी व्यक्ति का कोई भी' कार्य सिद्धि होने से बाकी नहीं रहता। आयुर्वेद की तरह यदि इन मांसों के भोजन से रोग विशेष पर आरोग्य होने का कथन होता तो वस्तु स्वभाव के आधार पर कथंचित माना भी जा सकता था परन्तु कार्य सिद्धि का कथन सर्वथा असत्य एवम् अयुक्त है। वास्तव में इन सूत्रों के रचयिताओं ने रचना करने में इतनी अधिक त्रुटियां रखदी है कि जिसका परिणम जैनत्व के लिये भयंकर सिद्ध हो रहा है। जैन विद्वानों का इस समय परम कर्त्तव्य है कि सूत्रों के संदिग्ध स्थलों को स्पष्ट करके इनके आधार पर प्रतिदिन बढ़ने वाले नाना फिरकों को एक सूत्र में बांधने का प्रयास करें।

'तेरापंथी युवक संघ.का बुलेटिन नं० ३' अक्टूबर सन् १९४४ ई०

मांस शब्द के अर्थ पर विचार

तेरापंथी युवक संघ, लाडनूं द्वारा प्रकाशित बुलेटिन (पत्रक) नम्बर २ में 'शास्त्रों की बातें' शीर्षक मैंने एक लेख दिया था जिसमें वर्त्तमान जैन सूत्रों की त्रुटिपूर्ण रचना और सन्दिग्ध वचनों के कारण, सभी श्वेताम्बर जैन सम्प्रदायों मे एक ही शास्त्रों को मानते हुये परस्पर होने वाले विरोध और वैमनश्य से जैनत्व का जो प्रति दिन ह्रास हो रहा है उस पर प्रकाश डाला था। और उसी लेख में सूर्यप्रज्ञप्ति तथा चन्द्रप्रज्ञप्ति दोनों सूत्र हरफ व हरफ एक होते हुवे भी भिन्न भिन्न माने जाने के विषय में लिखते समय प्रसङ्ग वसात् उनमें के दसम प्राभृत के सत्तरहवें प्रतिप्राभृत में भिन्न भिन्न नक्षत्रों में भिन्न भिन्न प्रकार के मांस भोजन करके यात्रा करने पर कार्य सिद्धि होने के कथन पर आश्चर्य प्रकट किया था। कारण अहिंसा प्रधान कहलाने वाले जैन धर्म के शास्त्रों में इस प्रकार मास भोजन के कथन का होना अवश्य आश्चर्य की बात है। मुनि समाज ने इस विषय पर समालोचना करते हुये यह फरमाया कि शास्त्रों में मांस भोजन के सम्बन्ध का जो कथन है वह मास नहीं है परंतु वनस्पति विशेष के नाम हैं। बड़ी प्रसन्नता की बात होगी यदि जैन शास्त्रों में मांस भोजन के विषय का जिन जिन स्थानों मे प्रसंग

आया है वे सब मिथ्या प्रमाणित हो जायँ ; परन्तु शास्त्रों की रचना करने में शास्त्रकारों ने ऐसी त्रुटियां रख दी है अथवा रचना के पश्चात् ऐसे प्रक्षेप हो गये हैं कि जिनका समाधान या सुधार हो सकना असम्भव के लगभग है। एक बात के लिये एक स्थान में कुछ ही लिखा हुआ है तो दूसरे स्थान में उससे विरुद्ध लिखा हुआ है। इसी का यह परिणाम है कि एक ही सूत्रों को मानते हुए मानने वालों में परस्पर विरोध पड़ रहा है और एक दूसरे को सब मिथ्यात्वी बता रहे हैं। विवादास्पद विषयों का सन्तोषजनक निर्णय आज तक नहीं हो सका और जब तक इन शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता का विश्वास हृदय से नहीं हट जायगा भविष्य में भी निर्णय हो सकने की आशा करना दुराशा मात्र है।

जैन शास्त्रों में मांस भोजन के सम्बन्ध में सूर्यप्रज्ञप्ति चन्द्रप्रज्ञप्ति के अतिरिक्त आये हुये कुछ प्रसंग पाठकों के विचारार्थ नीचे लिख कर उन पर विवेचन करूँगा जिससे पाठक अपने निर्णय करने का प्रयत्न कर सकें।

भगवती सूत्र के १५ वें शतक में गोसालक के विषय का वर्णन है। गोसालक ने भगवान महावीर पर (भस्म करने के लिये) तेजो लेश्या डाली। तेजो लेश्या ने भगवान पर पूरा असर नहीं किया परन्तु उससे उनके शरीर में विपुल रोग होकर पित्तज्वर, पेचिश और दाह उत्पन्न हो गया। इस रोग को उपशान्त करने के लिये भगवान ने अपने शिष्य सिंह नामक

साधु को बुलाकर कहा कि तुम मिंढीय ग्राम में रेवती गाथापत्नि के घर जाओ। उसने मेरे लिये दो कपोत (कबूतर) शरीर बनाये हैं उन कपोत शरीरों को मत लाना और अन्य के लिये-मार्जार के लिये कुक्कुड़ मास बनाया है उसे मेरे लिये ले आना। भगवान की आज्ञा के अनुसार सिंह अणगार उस रेवती गाथा पत्नि के घर गया और मार्जार के लिये बनाये हुए उस कुक्कुड़ मांस को लाकर भगवान को दिया जिसको खाकर भगवान ने अपना रोग उपशान्त किया।

भगवती सूत्र का वह मूल पाठ इस प्रकार है। 'तं गच्छहण तुमं सीहा मिंढियगामं णयरं रेवतीए गाहावइणीए गिहे, तत्थणं रेवतीए गाहावइए मम अट्ठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया ते हिंणो अट्ठो अत्थि। से अणे परियासि मज्जार कडए कुक्कुड़ मंसए तमाहारहि, तेणं अट्ठो।

भावार्थः—इसलिये हे सिंह मुनि ! मिंढिय गाव नामक नगर में रेवती गाथापत्नि के घर तू जा। उसने मेरे लिये दो कपोत शरीर पकाये हैं जिससे कुछ प्रयोजन नहीं; किन्तु उसके यहां अपनी बिल्ली के लिये बनाया हुआ कुक्कुड़ मास रखा है वह मेरे लिये ले आना उस से काम है।

इस पाठ पर विवेचन करते हुए कुछ ने तो कपोत शरीर को कबूतर का शरीर और मार्जार कृतं कुक्कुड़ मांस को बिल्ली के लिये बनाया हुआ कुकड़े का मांस बताया है और कई आचार्यों ने इन नामों को वनस्पति पर्क में लेकर कपोत को बिजोरे का फल

और कुक्कुड़ मांस को कोला (कुष्मान्ड) की गिरी तथा मार्जार शब्द को वायु रोग विशेष बतला कर समाधान किया हैं।

प्राचीन कोष ग्रन्थों में इन शब्दों को—कपोत को कबूतर, कुक्कुड़ को मुर्गा और मार्जार को बिल्ली लिखा हुआ है। जिन आचार्यों ने इन शब्दों को बनस्पति वर्ग में लेकर कपोत शरीर को बिजोराफल, कुक्कुड मांस को कोले (कुष्माण्ड) की गिरी और मार्जार को बायु रोग विशेष बताने का प्रयत्न किया है उनही के शब्दों को लेकर जर्मनी के डाक्टर हरमन जेकोबी को यह समझाया गया था कि यह शब्द बनस्पति विशेष के लिये आये हुए हैं। जिन आचार्यों ने शास्त्रों में आये हुए ऐसे निकृष्ट शब्दों पर परदा डालने का प्रयत्न किया है उन्होंने बुरा नहीं किया बल्कि प्रशंसनीय कार्य ही किया है। कारण कम से कम उनका आधार लेकर इन शब्दों से उत्पन्न होने वाली बुराइयों से तो बचा जा सकता है। उन आचार्यों को चाहिये था कि शास्त्रों में आये हुए ऐसे शब्दों को उन स्थानों से सर्वथा हटा देते जिस प्रकार ४५ सूत्रों में से १३ सूत्रों को हटा कर शेष ३२ सूत्रों को ही मान्य रखा गया है। सब से बड़ी विचारने की बात तो यह है कि क्या विजोरा और कुष्माण्ड, (कोला) फलों का नाम उस समय भारतवर्ष में प्रचलित नहीं थे अथवा बिजोरे को कपोत शरीर और कुष्माण्ड (कोले) को कुक्कुड मांस ही कहा जाता था। इन ही शास्त्रों में बिजोरे का नाम माउलिंग या विजपुर और

कोले का नाम कुष्माण्ड कहा हुआ मिल रहा है फिर इसी स्थल में बिजोरे को कपोत शरीर और कोले को कुक्कुड मांस कहने की कौन सी आवश्यकता थी यह विचार ने की बात है।

आचारांग सूत्र के कई स्थानों में ऐसे पाठ आते है जिनमें मुनियों के भोजन व्यवहारों के साथ मद्यंवा, मांसंवा, मच्छंवा शब्दों का प्रयोग हुवा है जैसे--आचारांग सूत्र के १० वें अध्ययन के चौथे उद्देश में इस प्रकार है—

"संति तत्थेपतियस्ल भिक्खुस्स पुरे संथुया वा पच्छासंथुया वा परिवसंति, तेजहा गाहावतीवा, गाहावतीणोवा, गाहावति-पुत्रवा, गाहावतीधुयाओवा, गाहावत्ती सणाओवा, धाईओवा, दासीवा दासीओवा, कम्मकरावा, कम्मकरीओ वा तहप्पगाराई कुलाई पुरेसंथुयाणी वा पच्छसुथुयाणि वा पुव्वामेव भिक्खा-यरियाए अणुपविसिस्सामि अविय इत्थ लभिस्सामि, पिंडंवा, लोयंवा खीरंवा दधिंवा नवणीयंवा घयं वा, गुलम्वा, तेल्लंवा, महूंवा, मज्जंवा, मांसंवा, संकुलिंवा, फाणियंवा पूयंवा सिहरि-णिंवा, तं पुव्वामेव भच्चा पेच्चा, पडिगाहं संलिहियं सपमज्जिय, ततोपच्छा, भिक्खुहिं सद्धिं गाहवातिकुलं पिंडवाय पडियाए पडिसिस्सामि निक्खभिस्सामिवा। माइठाणं फासेणो एवं करेज्जा। सेतत्थ भिक्खूहिं सद्धिं कालेणं, अणुपविसित्ता तत्थियरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसिय, वेसियं पिंडवायं पडिगाहेत्ता आहारं आहातेज्जा।

भावार्थः—किसी गांव में किसी मुनि का अपने तथा अपनी ससुराल के गृहस्थ पुरुष, गृहस्थ स्त्री, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू, धाय, नौकर नौकाराणी सेवक सेविका रहते हों, उस गांव में जाते हुए वह मुनि ऐसा बिचार करे कि मैं एक दफा अन्य सब साधुओं से पहिले अपने रिस्तेदारों में भिक्षा के लिये जाऊँगा, और मुझे वहां अन्न, पान, दूध, दही मक्खन घी, गुड, तेल, मधु, (शहद) मद्य (शराब) मांस, तिलपापड़ी गुड़ का पानी, बून्दी या श्रीखन्ड मिलेगा—उसे मैं सब से पहले खाकर अपने पात्र साफ करके पीछे फिर दूसरे मुनियों के साथ गृहस्थों के घर भिक्षा लेने जाऊँगा (यदि वह मुनि ऐसा करे) तो मुनि के लिये यह दोष की बात है। इसलिये मुनि को ऐसा नहीं करना चाहिये। किन्तु अन्य मुनियों के साथ समय पर अलग अलग कुलों में भिक्षा के लिये जाकर मिला हुवा निर्दूषण आहार लेकर खाना चाहिये।

इस ऊपर कहे पाठ से शास्त्रकार का अभिप्राय स्पष्ट मालूम हो रहा है कि यदि कोई साधु अन्य साधुओं से छिपा कर अपने कुटुम्बीजनों आदि से एक दफा आहारादि लेकर उसे खा लेवे पश्चात् पात्र साफ करके दूसरी दफा अन्य साधुओं के साथ जाकर फिर आहार लाकर खाले तो ऐसा करना साधु के लिये दोष युक्त बात है। कारण प्रथम तो अन्य साधुओं से छिपा कर अकेला खाना दोष की बात है और दूसरे बिना कारण दो बार भिक्षा लाना भी दोष की बात है। अकेला न जाकर यदि साधु

अन्य साधुओं के साथ जाकर दूध, दही, मद्य, मांस आदि पाठ में आई हुई कोई भी वस्तु लाकर अपने ही हिस्से के अनुसार खावे तो शास्त्रकार के अभिप्राय के अनुसार कोई दोष प्रमाणित नहीं होता। शास्त्रकार की दृष्टि में इस स्थान पर मद्य मांस साधु के लिये त्याज्य वस्तु होती तो पाठ में इन शब्दों का प्रयोग ही नहीं होता।

टीकाकार श्री शिलंगाचार्य फरमा रहे हैं कि किसी समय कोई साधु अतिप्रमादी और लोलुपी होकर मद्य मांस को खाना चाहे उसके लिये यह उल्लेख है। टीकाकार ने इस पाठ में आये हुए मद्य और मांस शब्दों को वनस्पति वगैरा कहने का प्रयत्न नहीं किया। कारण मद्य के साथ मांस काशब्द होने से वनस्पति पर्क में लेकर इस प्रकार कहने की कोई गुन्जाइश नहीं देखी। केवल साधु को अतिप्रमादी और लोलुपी होने का कह कर शुद्ध साधु के साथ मद्य मांस के व्यवहार का सम्बन्ध तोड़ने का प्रयत्न किया है परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि जो साधु प्रमाद वस मद्य मांस का प्रयोग करता है वह शुद्ध साधु नहीं रह सकता। यदि ऐसे अतिप्रमादी साधु के लिये यह कह देते कि इस प्रकार मद्य मास का प्रयोग करने वाला मुनि साधु नहीं रह सकता तो इस पाठ में आये हुए मद्य मांस के शब्दों के ऊपर उठने वाली शंकाओं का अपने आप ही समाधान हो जाता। पाठ के अभिप्राय के अनुसार केवल मद्य मांस के लिये साधु पर अतिप्रमादी और लोलुपीपन का आरोप करना बन नहीं

सकता। लोलुपीपन का आक्षेप यदि बन सकता है तो इस पाठ में आये हुए दूध, दही, मद्य, मांस आदि सब पदार्थों के सम्बन्ध में एकसा बन सकता है। केवल मद्य मांस के लिये लोलुपीपन का आक्षेप लगाना मूल सूत्र के पाठ के अभिप्राय से विरुद्ध है।

आचारांग सूत्रके इसी १० वे अध्यन के ६ वें उद्देश में भी एक पाठ है। जो इस प्रकार है—

"से भिक्खुवा जाव समाणे सेज्जं पुव्वं जाणेज्जा मंसं वा मच्छंवा भज्जिज्ज मार्णं प ए तेल्ल पूययं बा आए साए उवक्खडिज्जमाणं पेहाएणों खंद्ध खद्धणोउवसंकमित्तु ओभासेज्जा। णन्नत्थ गिलाणणीसाए।"

भावार्थः—मुनि किसी मनुष्य को माँस अथवा मछली भूजता हुआ देख कर या मेहमान के लिये तेल में तलती हुई पूड़ियां देख कर उनके लेने के लिये जल्दी दौड़कर उन चीजों की याचना नहीं करे। यदि किसी रोगी (बीमार) मुनि के लिये उन चीजों की आवश्यकता हो तो बात अलग है।

इस पाठ में शास्त्रकार का अभिप्राय साफ है कि साधु लोभाशक्त वना हुआ मांस मछली और तेल के पुड़ों की याचना करने के लिये जल्दी जल्दी दौड़ता हुआ न जावे। रोगी साधु के लिये शास्त्रकार ने जल्दी जल्दो जाने की छूट दी है। यदि साधु लोभाशक्त न बना हुवा स्वाभाविक गति से चलता हुवा

जावे तो शास्त्रकार के अभिप्राय के अनुसार जाकर मांस मछली या तेल के पुड़ों की याचना कर सकता है। रोगी साधु के लिये तो जल्दी जल्दी जाने का भी निषेध नहीं किया है। इस पाठ के लिये टीकाकार का मत है कि साधु की वैयावृत के लिये साधु मांस और मछली गृहस्थ के घर से याचना कर सकता है।

आचारांग सूत्र के १० वें अध्ययन के १० वें उद्देश में एक पाठ है जो इस प्रकार है—

से भिक्खु वा सेज्जं पुण जाएणेज्जा, वहु अट्ठियं मंसंवा, मच्छंवा वटुकंटगं अस्सिखलु पडिगाहितंसि अप्पेसिया भोयणजाए वहुउज्भिः यधम्मिए-तहप्पगारं वहुअट्ठियं मंसं मछंवा बहुकंटगं लाभे सते जावणो पडिजाणेज्जा।"

भावार्थः—बहुत अस्थियों (हड्डियों) वाला मांस तथा बहुत कांटे वाली मछली को जिनके कि लेने में बहुत चीज छोड़नी पड़े और थोड़ी चीज काम में आवे तो मुनि को वह नहीं लेनी चाहिये।

इसी उपर के पाठ से लगता हुआ पाठ है जो इस प्रकार है—

से भिक्खू माजाव समाणे सियाणं परो वहुअट्ठिएणा मंसेण, मच्छेण उवणिमन्तज्जा "आउसन्तो समणा, अभिकंखसि वहुअट्ठियं मंसं पडिगाहतएं ?" एयप्पगारं णिग्घोसं सोचा णिसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा "आउ सोतिवा बहिणिति वाणो खलु मे कप्पई से वहु-अट्ठियं मंसं पडिगहितए।

अभिक्खंसिमेदाऊं, जावइयं तावइयं पोग्गलं दलयाहि मा अट्ठियाई" से सेवं वदन्तस्स परो आभहट्टुअन्तो पडिग-हगंसि वहुअट्ठियं मंसं परिभाएता णिहटठू-दलएज्जा, तहप्पगारं पडिगाहगं परिहत्थंसि परिमायंसि वा अफासुयं अणेसणिज्जं लाभे सन्ते जावणो पडिगाहेज्जा। से आहच्च पडिगाहिए सिया तंणो "ही" तिवएज्जा। णो 'अणहि' तिवइज्जा। से त्त मायाए एगंत मवक्कमेज्जा, अहे आरामं सिवा अहे अवस्सयंसि वा अप्पं डिए जाव अप्पसतताणाए मंसगं मच्छगं भेज्जा अट्ठियाइ कंटए गहापसे त मायार एगंत मवक्क में भेज्जा अहेज्झामंथडिलंसिवा जाव पमज्जिय परिवेट्ठज्जा।"

भावार्थः—कदाचित मुनि को कोई मनुष्य निमन्त्रण करके कहे कि हे आयुष्मन् मुने! तुम बहुत हड्डियों वाला मांस चाहते हो? तो मुनि यह वाक्य सुन कर उसको उत्तर दे कि हे आयुष्मन् या हे बहिन! मुझे बहुत हड्डियों वाला मांस नहीं चाहिये यदि तुम वह मांस देना चाहते हो तो जो भीतर की खाने योग्य चीज है वह मुझे दे दो, हड्डियां मत दो। ऐसा कहते हुए भी गृहस्थ यदि बहुत हड्डियोंवाला मांस देने के लिये ले आवे तो मुनि उसको उसके हाथ या पात्र (वर्तन) में ही रहने दे, लेवे नहीं। यदि कदाचित वह गृहस्थ उस बहुत हड्डियोंवाले मांस को मुनि के पात्र में झट डाल देवे तो मुनि गृहस्थ को कुछ न कहे किन्तु ले जाकर एकान्त स्थान में पहुँच कर जीव जन्तु रहित बाग या उपाश्रय

के भीतर बैठ कर उस मांस या मछली को खा लेवे और उस मांस मछली के कांटे तथा हड्डियों को निर्जीव स्थान में रजोहरण से साफ करके परठ दे।

इस पाठ पर टीका करते हुए टीकाकार फरमाते हैं कि अनिवार्य कारणों पर अपवाद मार्ग में मत्स्य मांस का साधु वाह्य परिभोग कर सकता है।

उपर के पाठ में स्पष्ट कहा है कि बाग या उपाश्रय के भीतर बैठकर साधु उस मांस व मछली को खा लेवे। ऐसी दशा में टीकाकार का यह फरमाना कि अनिवार्य कारणों पर अपवाद मार्ग में मांस मछली का वाह्य प्रयोग करने का कहा है, सर्वथा खंडित हो जाता है। पाठ में खाने का शब्द साफ भोचा लिखा हुआ है ओर टीकाकार वाह्य प्रयोग का कह रहे हैं यह कहां तक युक्ति संगत है पाठक स्वयम् विचार लें।

उपरके इन सब पाठों में टीकाकार ने मद्यंवा, मंसंवा, मच्छंवा शब्दों के अर्थ शराव, मांस, मछली मानते हुए ही साधु के भोजन व्यवहारों में इनको किसी तरह से टाले जा सकने का प्रयत्न किया है। परन्तु वनस्पति नहीं कहा। टीकाकार श्री शिलंगाचार्य कोई साधारण कोटि के साधु नहीं थे, उन्होंने ११ अंग सूत्रों की टीका की थी जिनमें से वर्त्तमान में २ की टीका उपलब्ध है और वाकी की नहीं मिल रही हैं। इतने वड़े प्रगाढ़ विद्वान और जैनाचार्य पर यह इल्जाम तो कतई नहीं लगाया जा सकता कि इन पाठों में

आये हुए मद्यं वा, मंसंवा मच्छंवा शब्दों का वनस्पति विशेष अर्थ होते हुए भी उन्होंने जान बूझ कर मद्य मांसादि भोजन के लोभ से इन शब्दों के अर्थ को मद्य मांस और मछली ही कायम रखने का प्रयत्न किया हो। साधु जीवन में न उन्होंने कभी मांस खाया और न वे मद्य, मांस खाने के पक्षपाती थे, बल्कि सारे जीवन में मद्य मांस का निषेध करते हुए जैन धर्म और जैन साहित्य की सेवा की है। शिथिलाचार का दोष लगा कर मद्य मांस भोजन के साथ उनके शिथिलाचार का सम्बन्ध जोड़ना नितान्त भूल की बात है। यह बात सम्भव है कि उन्होंने अपने हृदय के भाव जैसे बने टीका करते समय सरलतया वैसे ही लिख दिये हों। एक तरफ तो उनको सूत्रों में आये हुए शब्दों को तोड़ मरोड़ कर बदल देने अथवा उठा देने से अनन्त संसार परिभ्रमण का भय था (कारण शास्त्रकारों का यही विधान है) और दूसरी तरफ समय ने इतना अधिक परिवर्त्तन कर दिया था कि मद्य, मांस और मछली का व्यवहार जैन साधु तो क्या परन्तु श्रावक तक के लिये महा निषेध की वस्तु बन गई थी। ऐसी अवस्था में टीकाकार को ऐसे पाठों के सम्बन्ध में सिवाय इस प्रकार के कथन कर सकने के अन्य कोई उपाय ही नहीं था। खयाल होता है कि उस समय शायद मांस भोजन के व्यवहार के खिलाफ श्रावक समाज में इतनी सख्त मनाही की पाबन्दी नहीं थी। अन्यथा कई श्रावकों के जीवन में मांस भोजन का जो सम्बन्ध

देखने में आता है वह नहीं आता। जैसे श्री नेमीनाथ भगवान के विवाह के समय राजुल के पिता श्री उग्रसेन महाराज के घर पर भोजन सामग्री के लिये पशु पक्षियों को मारने के लिये एकत्रित किये जाने से अनुमान होता है। यदि श्रावक समाज में मांस भोजन के खिलाफ सख्त मनाही न हो तो मुनि समाज के लिये भी अनिवार्य कारणों में पके हुवे मास को अचित्तअवस्था में अचित्त समझ कर लिया जाना सम्भव हो सकता है। मद्य मांस का सेवन सर्वथा अनिष्ट कारक निन्दनीय एवम् दुर्गत का दाता है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। शास्त्रों मे मांस भोजन के निषेध मे अनेक पाठ आये है और कुछ पाठ ऐसे भी आये हैं जैसे उपर लिखे आचाराग के पाठ हैं। शास्त्रोंकारों को चाहिये था कि ऐसे पाठोंको सन्दिग्ध नहीं रखते साफ तौर पर खुलासा करके लिखते परन्तु यही तो उन्होंने त्रुटियां की है कि किसी सिद्धान्त को कायम करने में उसके पक्ष को पूर्वापर पूरी तरह निभा न सके। रचना करने मे अनेक त्रुटियां कर दी। जिस बात के लिये किसी एक स्थान मे विधि कर दी है तो दूसरे मे उसी के लिये निषेध कर दिया है। सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्रों मे इस प्रकार बेमेल बातों का होना सर्वथा आश्चर्य की बात है।

श्री जैन श्वेताम्बर तेरा पंथ सम्प्रदाय के श्रीमज्जायाचार्य महाराज ने 'प्रश्नोत्तर सार्द्ध शतक' नामक पुस्तक में पृष्ठ १५५ पर आचारांग सूत्र में आये हुए मंसं मच्छं शब्दों पर अपने

विचार प्रकट किये है वे इस प्रकार है—"ए मंस नाम वनस्पति नो गिर दीसे छै। भगवती शा० ८-३-६ पञ्चेन्द्री नो मांस खाधां नरक कही छै। (१) तथा प्रश्न व्याकरण अ० १० साधु ने मांस खाणों बर्ज्यों-छै। (२) तेमाटे ए बनस्पति नो मांस छै। पन्नवणा पद १ कुलिया ने अस्थि हाड कह्या, (३) तथा दशवैकालिक अ० ५ उ० १ गाथा ७३ कुलिया ने अस्थि हाड कह्या। इम कुलिया ने अस्थि हाड अनेक ठामें कह्या तेणे न्याय गिरने मांस कहीजै-अने इहां बृत्तिकार रोग मिटावा मंसनो बाह्य परिभोग कह्यो अने एहनो अर्थ टब्बाकर कह्यु ते कहे छे—इहाँ बृतिकार लोक प्रसिद्ध मांस मच्छादिक नो भाव वखाण्यो परन्तु सूत्र विरुद्ध भणी एह अर्थ इम न सम्भवै पछे वलि जिन मत ना जाण गीतार्थ प्रमाण करै ते प्रमाण। शास्त्र मांही अस्थि शब्द कुलिया घणे ठामें कह्यो छै। पन्नवणा सूत्र माँही बनस्पति ना अधिकारे एगटिया ते हरडे कहंई वहु अट्ठिया ते दाड़िम कहंई प्रभृति एवा शब्द छै बलि अस्थि शब्दे कुलिया बोल्या छै तो मांस शब्द मांहिली गिर सम्भवाये छै। एभणी ते बनस्पति विशेष मांस मच्छ फलाव्या छै। इम चारित्रिया मे मांस मच्छ उघाड़े भावी कारणे पिण आदरवा योग्य नहीं दीसै वली सूत्र मांहि साधु ने उत्सर्ग भाव कह्या छॅ। वृति में अपवाद कह्यो छै तेणे विषै सूत्र नो अर्थ जिम उत्सर्ग छै तिमज मिलै।"

इस ऊपर के कथन में श्री आचार्य महाराज के हृदय में भी

इस मांस मच्छ शब्द के विषय में शंका बनी हुई थी-उन्हों ने स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहा कि मांस शब्द का अर्थ वनस्पति की गिरी ही होता है और इसका अमुक कोष ग्रन्थ या शास्त्रों में इस प्रकार प्रमाण है बल्कि वे कहते है कि—'ए मांस नाम बनस्पति नो गिर दीसे छै, अस्थि शब्द कुलिया बोल्या छैं तो मांस शब्द मांहिली गिर सम्भवाय छै कुलिया ने अस्थि हाड अनेक ठामें कह्या तेणे न्याय गिर ने मास कहीजे माटे ए बनस्पति नो मांस छे।'

इस प्रकार दीसे छै, आदि शंका भरे शब्दों का व्यवहार करते हुए कहते है कि "जिन मत ना जाण गीतार्थ प्रमाण करे ते प्रमाण" यानी जैन धर्म के जानने वाले विद्वान जो प्रमाण करे वही प्रमाण मानना चाहिये।

उपर आये हुए वाक्यों से यह स्पष्ट प्रकाशित होता है कि उन्हें शास्त्रों में मांस शब्द का अर्थ मांस के सिवाय अन्य कोई भिन्न अर्थ नहीं मिला। इसलिये कुलियों (गुठली) को अस्थि कहने का न्याय बताते हुए किसी तरह से मास को बनस्पति की गिर बता कर समाधान करने का प्रयत्न किया है। अस्थि शब्द का प्रयोग जहां पर गुठली (कुलिया) के अर्थ में हुआ है वहां बनस्पति वर्ग में फलों के भेद बताने के प्रकर्ण मे हुआ है। और जहां मांस शब्द के साथ हुआ है वहां उसका अर्थ केवल हाड ही होता है। केवल मांस के लिये बनस्पति की गिरी शास्त्रों में किसी स्थान में नहीं कहा गया है और न मच्छ

(मत्स्य) नाम की भी कोई बनस्पति ही है। यदि मांस और मच्छ का बनस्पति फल विशेप में प्रमोग होता तो इस प्रकार के लोक प्रसिद्ध निकृष्ट अर्थ निकलने वाले शब्दों का खुलासा करते हुए सर्वज्ञ बता देते कि बनस्पति की गिर को भी मांस कहा जाता है और मच्छ नाम की भी वनस्पति होती है।

बुलेटिन नम्बर २ के गत लेख में सूर्यप्रज्ञप्ति चन्द्रप्रज्ञप्ति के भिन्न भिन्न नक्षत्रों के भोजन से कार्य सिद्धि के कथन में जो भिन्न भिन्न ९—१० मांसों के नाम आये हैं उनके विषय में यह कहना कि बनस्पति विशेष के नाम हैं किसी प्रकार से भी नहीं बन सकता। कारण विपाक सूत्र के दुःख विपाक के सातवें अध्ययन में अमरदत्त कुमार की कथा चली है। उस कथा में धन्वन्तरी वैद्य द्वारा रोगियों को भिन्न भिन्न मांसों के पथ्य खाने के उपदेश से तथा स्वयम् के मांस खाने के फल स्वरूप छट्ठे नरक में जाने का कथन आया है। सूर्यप्रज्ञप्ति चन्द्रप्रज्ञप्ति में आये हुए भिन्न भिन्न वसभमंस, मिगमंस, दीवगमंस, मेढगमंस, णक्खिमंस, वाराहमंस, जलयरमंस, तित्तरमंस, वट्टकमंस और विपाक सूत्र में आये हुए मांसों के नाम प्रायः एक ही हैं। इसलिये एक सूत्र में उन मांसों को मांस समझ लेना और दूसरे सूत्र में उन्हीं मांसों के नामों को बनस्पति विशेष समझ लेना यह तो अपनी समझ की स्वच्छन्दता है।

सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति में टीकाकार ने सारे ग्रन्थ की टीका की है परन्तु जिस स्थान में इन मांसों के भोजन का कथन है केवल उसी स्थल की टीका करनी छोड़ दी और टव्वाकार ने भी ऐसा ही किया है। केवल पहिले नक्षत्र कृतिका मे (मूल पाठ मे कहे हुए दही के भोजन के अनुसार ही) दही का भोजन करके यात्रा करे तो कार्य सिद्धि होती है बाकी २७ नक्षत्रों के लिये यह कह दिया कि कृतिका की तरह इनके मूल पाठ मे जो लिखा है वैसा ही समझना। टीकाकार और टव्वाकार का इस स्थान में मौन रहना साफ बता रहा है कि ऐसे निकृष्ट विधान में कलम चलाने की उनकी इच्छा नहीं हुई। शब्दों के अर्थ को बदलते है तो संसार परिभ्रमण का भय है और नामों के मुताबिक कहते हैं तो अनेक मासों के नाम लिखने पड़ते हैं जिसका परिणाम भारी हिंसा हो सकती है।

मद्य, मांस, मच्छ और कपोत शरीर, कुक्कुड़मास तथा सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि जिन जिन शास्त्रों मे जिस जिस स्थान में ऐसे मद्य, मासादि शब्दों के साथ भोजन व्यवहारों का सम्बन्ध है उन वाक्यों तथा पाठों के शब्दों को क्यों नहीं उन स्थलों से सर्वथा हटा दिया जाता और इनके स्थान में वनस्पति विशेप के शब्द रख दिये जाते? यह तो मानी हुई बात है कि वर्त्तमान शास्त्रों के सब भाग को हम सर्वज्ञ प्रणीत नहीं कह सकते और न इनको कोई सर्वज्ञ प्रणीत सिद्ध ही कर

सकता है क्योंकि यदि यह सर्वज्ञ प्रणीत होते तो इनमें असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होने वाली बातें सैकड़ों तथा हजारों की संख्या में नहीं पाई जाती।

क्या यह इन शास्त्रों की त्रुटि पूर्ण रचनाओंका परिणाम नहीं है कि एक ही शास्त्रों को मानते हुए इन में आये हुए वाक्यों तथा पाठों का भिन्न भिन्न अर्थ लगाया जा रहा है और उसी के कारण एक सम्प्रदाय दूसरे को मिथ्यात्वी बता रहा है तथा एक सम्प्रदाय लोकोपकारक संसार के कामों को निस्वार्थ भाव से करने पर भी एकान्त पाप बता रहा है और दूसरा सम्प्रदाय उन्हीं कामों को करने में पुन्य तथा धर्म बता रहा है ?

शास्त्रों के रचने में जो त्रुटियाँ रही हैं उन्हीं का यह परिणाम है कि भिन्न भिन्न अर्थ लगाये जा रहे है अन्यथा क्या कारण है कि एक ही शास्त्रों को मानने वालों के उपदेश में इस प्रकार का आकाश पाताल का अन्तर हो। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि जैन के साधु कंचन और कामिनी के सर्वथा सच्चे त्यागी हैं। उनके लिये यह तो दावे के साथ कहा जा सकता है कि वे किसी साँसारिक अथवा आर्थिक स्वार्थ के लिये शास्त्रों के इस प्रकार भिन्न भिन्न अर्थ नहीं कर रहे हैं फिर अर्थ करने में इस प्रकार रात दिन का अन्तर किस लिये ? इसका एक मात्र कारण यही है कि शास्त्रों की रचना करने में इस प्रकार सन्दिग्ध शब्दों और वाक्यों का तथा पाठों का

प्रयोग हो गया है। इसलिये प्रत्येक सम्प्रदाय के धर्माचार्य महाराज तथा जैन धर्म के हितेच्छुओं से मेरी विनय पूर्वक नम्र प्रार्थना है कि इन सब शास्त्रों का प्रारम्भ से आखिर तक सब का संशोधन होना चाहिये और इन में के असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रमाणित होने वाले तथा मानव-हितों के विरुद्ध पड़ने वाले वाक्यों तथा पाठों को हटा देना चाहिये। केवल उन वचनों को रखना चाहिये जो मानव जीवन का निर्माण तथा कल्याण करने वाले हों।

उपसंहार

जैन-श्वेताम्बर शाखाके तीनों सम्प्रदायों के आचार्यों से वार्त्तालापः शास्त्र-संशोधन की योजना।

अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य भी अपने प्रारम्भिक कालमें समाज विहीन अवस्था में रहा था। प्रकृति द्वारा मानव शरीर में भाषा के विकास होने की सुविधा प्राप्त थी इसलिये एक दूसरे के अनुभव और विचारों के आदान-प्रदान से मनुष्य के ज्ञान की वृद्धि में बहुत अधिक सहायता मिली। जीवन-संघर्ष में होने वाले कष्टों को मिटाने का उसने बारबार उपाय सोचा और विचार किया कि एक दूसरे की सहायता और सहयोग से काम लिया जाय तो इन कष्टों को मिटाने में बहुत बड़ी सहायता मिलेगी। उसने इस दिशा में प्रयत्न किया जिसके परिणाम-स्वरूप समाज की रचना हुई। एक के कष्ट में दूसरे ने हाथ बटाया और इस प्रकार मनुष्यों ने अपने कष्ट को घटाने या मिटाने में बहुत हद तक सफलता प्राप्त की। समाज के बनने की यही बुनियाद है। समाज—जिसकी बुनियाद ही एक दूसरे के सहयोग और सहायता के उद्देश्य की पूर्ती के लिये हुई हो, उसमें ऐसे विचारोंका प्रसार होना कि एक दूसरे की सेवा और सहायता करना एकान्त पाप है, अभाव और विपत्ति में कोई किसी की निस्वार्थ-भाव

से सेवा और सहायता करे तो भी उसे एकान्त पाप होता है ; तो ऐसे भावों का प्रसार करना उसके उद्देश्य के मूल पर कुठाराघात करना है। विपत्तिग्रस्त को सहायता करने, माता-पिता,पति आदि पूज्यजनों की सेवा शुश्रुषा करने, शिक्षाके लिये शिक्षालयों की व्यवस्था करने और रुग्नों के लिये चिकित्सालयों के प्रबन्ध करने आदि सार्वजनिक परोपकार के सब प्रकार के कामों को निस्वार्थ भावसे करने पर भी एक सद्-गृहस्थ को एकान्त पाप होने के भावों की पुष्टि जैन शास्त्रों से होती है—इससे इनकार नहीं किया जा सकता। जैन शास्त्रों में पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस इस प्रकार जीवों की ६ काय मानी गई है। हिलने-चलने वाले सब प्रकार के जीवों को त्रसकाय कहा गया है और इसके अतिरिक्त पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति को स्थावर काय कहा गया है। इनके भी सूक्ष्म और बादर एवम् पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे अनेक भेद किये हैं। वनस्पति काय के दो भेद किये हैं—प्रत्येक-वनस्पति काय और साधारण-वनस्पति काय। प्रत्येक-वनस्पति काय को छोड़ कर पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु आदि पाचों ही शूक्ष्म स्थावर कायके जीव सम्पूर्ण लोक में भरे पड़े हैं यानी संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं जिसमें ये जीव ठसाठस नहीं भरे हों। हिलने-चलने वाले त्रसकाय के जीवों को ताड़ने, तर्जने, मारने आदि में जिस प्रकार हिंसा का होना माना गया है, उसी प्रकार इन पांच स्थावर काय के जीवों को कष्ट

पहुंचाने, मारने आदि में भी हिंसा का होना बताया गया है और हिंसा में पाप माना गया है। हिंसा करने और हिंसा से बचने के लिये तीन करण (करना, करवाना और करने-करवाने का अनुमोदन करना) और तीन जोग (मन, बचन और, काया) की व्यवस्था बताई गई है। विचार के देखा जाय तो ऐसी अवस्था में किसी का भी बिना जीवों की हिंसा किये किसी भी कार्य को कर सकना असक्य है। मुँह से श्वास और शब्द निकलने पर वायु-काय के असंख्यात जीवों के मरने की हिंसा, पानी पीने में अप्काय यानी जलके असंख्यात जीवों के मरने की हिंसा, अग्नि जलाकर काम में लाने पर अग्नि-काय के असंख्यात जीवों के मरने की हिंसा और पृथ्वी के ऊपरका कुछ भाग (दस-पांच अंगुल ऊपरकी सतह का भाग) छोड़ कर अन्य सब भाग पर चलने फिरने आदि किसी प्रकार के स्पर्श करने से पृथ्वी-काय के असंख्यात जीवों के मरने की हिंसा ! इस हिंसा से मनुष्य को पाप लगने का जिन शास्त्रों में कथन हो, उन शास्त्रों को मानने वाले का इस संसार में बिना पाप किये एक क्षण भी जिन्दा रह सकना असम्भव है—चाहे वह कितना भी त्यागी और धर्मात्मा क्यों न हो जाय। यदि उस त्यागी को ऐसी हिंसा और पाप से बचना है तो अपना शरीर त्याग करे तो वह भले ही अहिंसक रह सकने की आशा करले वरना सर्वथा असम्भव बात है। यह एक सीधी-सी तर्क है कि प्यासे मरते हुए प्राणी

को एक ग्लास पानी—जो कि असंख्यात जल काय के जीवोंका पिण्ड है (पानी की एक नन्ही-सी बून्द में असंख्यात जीव माने गये हैं)—पिलाने पर एक जीव को बचाना और एवज में असंख्यात जीवों को मारने का भागी बनना किसी प्रकारसे भी युक्ति-संगत नहीं ; जब कि प्रत्येक जीव की, चाहे वह त्रस हो चाहे स्थावर दोनों की, एक समान स्थिति मानली गई हो। शास्त्रों में लिखा है कि स्थावर जीवों के भी प्राण हैं, वे स्वासोच्छ्वास लेते है, आहार प्राप्त करते हैं और किसी प्रकार के स्पर्श या साधारणतः आक्रान्त होने पर उनके शरीर में अत्यन्त वेदना होती है और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में एक त्रस जीव को बचाने वाला क्या असंख्यात स्थावर जीवों पर बीतने वाले कष्टों और संकटों को भूल सकता है ? शास्त्रों में यदि ऐसा कथन होता कि इन पांच स्थावर काय के जीवों के जीवन का मूल्य मानव जीवन की अपेक्षा में नगण्य है, अथवा एक मनुष्य के बचाने मे असंख्यात स्थावर जीवों की हिंसा का होना कोई मूल्य नहीं रखता ; तो पाप-धर्म को विवेचना की तुला पर चढ़ाकर निर्णय कर सकनेका मनुष्य को मौका मिलता ; परन्तु बात ऐसी नहीं है। शास्त्र तो, चाहे जीव त्रस हो चाहे स्थावर, सब को जीव बताकर उनको विराधने में पाप होने का कथन कर रहे हैं। जीव के मरने—नहीं मरने—के अतिरिक्त पाप धर्म लगने का एक जरिया मनुष्य के लिये और भी बतलाया गया है। वह है मानव के मन

के परिणाम (भाव)। परन्तु इसका कथन करने में जैन शास्त्रों ने अन्य शास्त्रों की तरह इसकी प्रधानता का स्पष्ट दिग्दर्शन नहीं किया। उसी का यह परिणाम हो रहा है कि यथार्थ विवेचना के पश्चात् निस्वार्थ बुद्धि (सेवा भाव) पूर्वक किये हुए संसारके परोपकारी कामों में भी (जिनमें जीव मरने का प्रश्न उपस्थित नहीं होने पर भी) एकान्त पाप का होना बतलाया जा रहा है!

शास्त्रोंने, शास्त्रों को सर्वज्ञ प्रणीत एवम् भगवान्‌के बचन आदि नाना तरहके आकर्षक शब्दों की पुट देकर और अक्षर अक्षर सत्य कह कर तथा अन्यथा समझने वाले को अनन्त संसार परिभ्रमण का भय दिखाकर मानव की बुद्धि को जड़वत् बना दिया है। और प्रचारकों के लम्बे समय के प्रचारने आज मनुष्य के दिमाग को अन्धश्रद्धा से इतना अधिक भर दिया है कि वह यह सोचने में भी असमर्थ हो गया है कि ये शास्त्र हमारे जैसे मनुष्यों के द्वारा ही निर्मित हैं। 'शास्त्रों की बातें' शीर्षक मेरे लेखों से यह भली प्रकार प्रमाणित हो चुका है कि वर्त्तमान जैनशास्त्रों में प्रत्यक्ष प्रमाणित होनेवाली असत्य, अस्वाभाविक एवम् असम्भव बातें एक नहीं अनेक हैं। फिर भी जैन शास्त्रों के एक धुरन्धर एवम् संस्कृत प्राकृत भाषा के विद्वान आचार्य यह भावना लिये हुऐ वैठे है कि जैनशास्त्रों की भूगोल-खगोल सम्बन्धी बातें यदि आज के दिन प्रत्यक्ष में अप्रमाणित हो रही हैं और विज्ञान की कसौटी पर गलत उतर रही हैं तो क्या हुआ; एक समय ऐसा आयगा जब जैनशास्त्रों

की प्रत्येक बात सत्य प्रमाणित हो जायगी। ऐसे सज्जनों से मेरा एक प्रश्न है कि वर्तमान पृथ्वी, जो गेन्द की तरह एक गोल पिण्ड है, शायद आपकी भावना के अनुसार ढहकर चपटी हो जाय, और उसकी पचीस हजार माइल की परिधि टूटकर असंख्यात योजन लम्बा चौड़ा चपटा स्थल बन कर फैल जाय; परन्तु एक गोलाई के व्यास की परिधिका बढ़ना कैसे सम्भव होगा जो जैन शास्त्रों के बनाये हुये Formula (गुर) से गणना करने पर प्रत्यक्ष के माप से बड़ा और गलत प्रमाणित हो रहा है! अब तो शास्त्रों की उन बातों से जो प्रत्यक्ष में असत्य प्रमाणित हो रही हैं कतई इनकार करना अथवा उनके लिये आगा-पीछा करके बहाना बनाकर येन-केन-प्रकारेण असत्य को सत्य बताने का असफल प्रयत्न करना केवल अपने आपको हास्यास्पद बनाना है। समय ऐसा आ गया है कि इन शास्त्रों को हम यदि सब प्रकारसे श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं तो हमें उनको विकार से रहित करना होगा। उनमे लिखी हुई असत्य बातों को निकालकर बाहिर करना होगा। संसार मे विषमता फैलाने वाले विधि-निषेधों को हटाकर उनके स्थान पर मानवोपयोगी व्यवस्था स्थापन करनी होगी। अब 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' का समय नहीं रहा।

वर्त्तमान जैन शास्त्रों में परिवर्त्तन करना कोई साधारण काम नहीं है। इसके लिये संस्कृत प्राकृत भाषा तथा सब दर्शनों के पूरे ज्ञान की आवश्यकता है और इससे भी अधिक

आवश्यकता है वर्त्तमान संसारके विकास पाये हुए अनुभव तथा विज्ञानकी जानकारी और शुद्ध विवेक एवम् निर्मल बुद्धिके साथ अदम्य साहस की। इसके लिये सब से सरल योजना यह है कि जैन कहलाने वाले बड़े बड़े विद्वान् एवम् आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अनुभवी मनीषियों की एक महती परिषद् स्थापित हो और उसके द्वारा इन शास्त्रों का शोधन और निर्णय हो। जैन शास्त्र जैनाचार्यों की पैतृक सम्पत्ति है। उनका कर्त्तव्य है कि इन शास्त्रों के सुधार और बेहतरी के लिये कोई योजना काम में लावें परन्तु खेद है कि आजकल प्रायः साधु-संस्थाओं को एक दूसरे की कटु आलोचना से ही फुरसत नहीं मिलती। गतवर्ष कतिपय विद्वान जैनाचार्यों से इन शास्त्रों के विषय में वार्त्तालाप करने का मुझे सु-अवसर मिला। उनसे जो वार्त्तालाप हुआ वह उसी प्रकार यहां दिया रहा है जिससे स्थिति पर कुछ प्रकाश पड़े। तेरापंथी-युवक-संघँ लाडनू (मारवाड़) द्वारा प्रकाशित बुलेटीन नम्बर २ में 'शास्त्रों की बातें' शीर्षक मैंने एक लेख दिया था जिसमें चन्द्र-प्रज्ञप्ति, सूर्य-प्रज्ञप्ति सूत्रके दसम प्राभृत के सतरहवें प्रतिप्राभृतमें भिन्न भिन्न नक्षत्रों में भिन्न भिन्न प्रकार के भोजन करके यात्रा करने पर कार्य सिद्धि होनेका कथन है और इस भोजन-विधान में ६।१० स्थानों, में भिन्न भिन्न प्रकारके मांसोंके भोजन का भी कथन है यह बतलाया था। उस समय जैनश्वेताम्बर तेरापं-थ सम्प्रदाय के कुछ सन्त-मुनिराजों से इस सम्बन्ध में मालूम

हुआ कि इस स्थान में जो यह मांसों के नाम दिखाई देते हैं वे मांस नहीं हैं परन्तु वनस्पतियों के नाम हैं। तब से इन नामों के विषय मे अन्य सम्प्रदाय के किसी विद्वान् संत-मुनिराज से पूछकर निश्चय करने की मेरी इच्छा थी। कार्यवसात् तारीख १२ जुलाई सन १९४४ श्रावण वदि ७ सं० २००१ को मैं बीकानेर गया। वहां पर मेरे मित्र श्री मंगलचन्दजी शिवचन्द-जी साहब झावक से मिला तो श्री शिवचन्दजी साहब ने मुझसे कहा कि आजकल यहांपर जैनाचार्य श्री विजयवल्लभ सूरिजी महाराज विराजते हैं। बड़े उच्च कोटि के विद्वान हैं और जैन शास्त्रों के तो अद्वितीय पण्डित हैं। आप उनके दर्शन करें और जैन शास्त्रों के विषय मे कुछ पूछना हो तो पूछें। मैंने सोचा यह बहुत सुन्दर संयोग मिला है इस अवसर का लाभ अवश्य उठाना चाहिये। श्री शिवचन्दजी साहब के साथ मैं श्री आचार्य महाराज के पास उपस्थित हुआ। उनके पास बहुत से पंजाबी और कुछ बीकानेरी श्रावक बैठे हुये थे। शिष्टाचार के अनुसार वन्दना-नमस्कार कर सुखसाता पूछकर मैं भी बैठ गया। श्री शिवचन्दजी साहब ने आचार्य महाराज के समक्ष मेरा परिचय देना प्रारम्भ किया कि यह सुजानगढ के बच्छराजजी सिंघी हैं, मन्दिरपंथी हैं, सुजानगढ का भव्य मन्दिर इन लोगों का ही बनवाया हुआ है और 'तरुण जैन' मे शास्त्रों की बातें शीर्षक जैन शास्त्रोंके विषय मे इनके ही लेख निकलते थे। इस प्रकार परिचय समाप्त होते ही आचार्य

महाराज ने फरमाया कि मैं इन्हें जानता हूं। मैंने पूछा-महाराज साहब, आज्ञा हो तो एक बात पूछना चाहता हूं तो उन्होंने फरमाया कि, पूछो। मैंने कहा महाराज, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति के दसम प्राभृत के सतरहवें प्रति-प्राभृत में भिन्न भिन्न नक्षत्रों में भिन्न भिन्न प्रकार के भोजन करके यात्रा करने पर कार्य सिद्धि होने का जो कथन है वहां पर सब नाम क्या बनस्पतियों के ही हैं या अन्य कुछ; तेरापंथ सम्प्रदाय के सन्त-मुनिराज तो बनस्पति-विशेष के नामों का होना ही बतला रहे हैं। इतना सुनते ही आचार्य महाराज मुझसे कहने लगे कि मैंने तेरे लेख पढ़े हैं। ऐसे ऐसे लेख लिखकर तुम स्वयम् भ्रष्ट होते हो और लोगों को भ्रष्ट करते हो। तुम को शास्त्रों के पढ़नेका क्या अधिकार है ? और प्रश्न पूछने का क्या अधिकार है ? मैंने नम्रता पूर्वक अर्ज की कि महाराज, प्रश्न पूछने का अधिकार तो आप से थोड़ी देर पहिले ही मैं प्राप्त कर चुका हूं; और शास्त्रों के पढ़ने का अधिकार अन्य किसी से लेने की कोई आवश्यकता नहीं थी वह तो मेरे जैसे स्वतन्त्र विचार वालोंने स्वयम् ही प्राप्त कर लिया है; परन्तु आपकी बात करने की यह रुख सर्वथा अनुचित है। मैं तो मन्दिरपंथी हूं अतः आप ही की सम्प्रदाय का एक व्यक्ति हूं। आप जैनाचार्य और महान हैं मैं तो आपके समक्ष एक नगण्य व्यक्ति हूं; परन्तु आपको मालूम रहना चाहिये कि मन्दिरपंथ की आज थली प्रान्त में क्या स्थिति हो रही है। जगह-जगह जैन मन्दिरों में ताले

लगते जा रहे हैं और संसार के परोपकार के सब कामों को निस्वार्थ भाव से करने पर भी जैन शास्त्रों के आधार पर एकान्त पाप होना सिद्ध किया जा रहा है। आपने इसके सम्बन्ध में क्या प्रयत्न किया। मैं तो यही कहूंगा कि संसार के परोपकार के कामो को करने मे जिन शास्त्रों के द्वारा पाप सिद्ध होता हो हम तो उन शास्त्रों को मानव समाज की व्यवस्था को बिगाड़ने वाले समझते हैं और समाज की व्यवस्था को बिगाड़ने वाले शास्त्रों का न रहना ही हम उचित समझते हैं। इस प्रकार कहकर मैं उठ खड़ा हुआ और आचार्य महाराज से प्रार्थना की कि मेरे प्रति आपके हृदय मे किसी प्रकार क्षोभ उत्पन्न हुआ हो तो मैं वारम्बार खमाता हूं। आचार्य महाराज ने फरमाया कि ठहरो, सुनो। नक्षत्रों के भोजन विधान के सम्बन्ध मे तुम जो पूछते हो—वहां जिन भिन्न भिन्न मांसों के नाम आये हैं वे मांस ही हैं। वनस्पति विशेष के नाम नहीं हैं। तेरापंथी जो कहते है वे गलत कहते हैं। उस स्थान पर जो वचन है वे अन्य मजहब वालों के कथन के वचन हैं। मैंने कहा—महाराज, अन्य मजहब वालों के वचन का वहां पर कोई हवाला नहीं है। इन सूत्रों में जिन स्थानों मे अन्य मजहब वालों के वचनों का प्रसङ्ग आया है उनमें सबमें प्रतिवृत्तियों से स्पष्ट हवाला दिया हुआ है—जो इस स्थान मे कहीं पर नहीं है। इसपर महाराज साहब ने फरमाया कि भाई, तुम समझते के नहीं ; और यह कहकर वहां से उठकर अन्दर के कमरे में पधारने

लगे। मैंने बन्दना नमस्कार, खमत खामणा करते हुए अपना रास्ता लिया। रास्ते में श्री शिवचंदजी कहने लगे कि आपने बहुत शान्ति दिखाई। मैंने कहा—जैन शास्त्रों में परिवर्त्तन कराकर विकार हटा सकने की मैंने आशा लगा रखी है। अभी तो बहुत से जैनाचार्यों से बातें करनी हैं। गरम होने से कैसे काम चलेगा। इसके पश्चात् तारीख १३ अगस्त सन् १६४४ मिती भादवा बदि १० सं० २००१ को जैनश्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुलसीरामजी महाराज से सुजानगढ़ में वार्त्तालाप हुआ जो इस प्रकार हैः—बन्दना नमस्कार कर सुख साता पूछनेके पश्चात् मैंने अर्ज की कि आप आज्ञा फरमावें तो मैं जैन शास्त्रों के विषय में कुछ निवेदन करना चाहता हूं तो श्री जी महाराज ने फरमाया कि पूछो। मैंने कहा आप 'तो जैन शासन के एक मालिक हैं और मैं जैनका तुच्छ सेवक हूं। मनुष्य के रहने के लिये मकान जिस प्रकार आधारभूत होता है उसी प्रकार जैन शास्त्र भी हमारे अध्यात्म के लिये आधार-भूत हैं। मकानमें जिस प्रकार धूला–कूड़ा करकट इकट्ठा हो जाता है उसी प्रकार जैन शास्त्रों मे भी विकार आ गया है। सेवक के नाते मेरी अर्ज है कि शास्त्रों में आये हुए इस विकार को आप हटवावें। भूगोल, खगोल, गणित आदि नाना विषयों में जैन शास्त्रों की बताई हुई बातें प्रत्यक्ष मे असत्य प्रमाणित हो रही हैं। यों तो लोगों की श्रद्धा स्वतः ही कम होती जा रही है फिर जब यह प्रत्यक्ष की असत्य बातें दिखाई देंगी तो शास्त्रों

पर श्रद्धा सर्वथा नहीं रहेगी। इसका परिणाम जैनत्व के लिये हितकर नहीं होगा। शास्त्रों मे परिवर्त्तन करने के लिये मैं आपको सब प्रकार से समर्थ समझता हूं। जिन योग्यताओं की इसके लिये आवश्यकता है वे सब आप में मौजूद हैं। आप संस्कृत प्राकृत भाषा के विद्वान और जैन एवम् अन्य दर्शनों के ज्ञाता हैं। मेरा अनुमान है कि आप चाहें तो परिवर्त्तन कर सकते हैं। इसलिये आपसे विशेष करके प्रार्थना है कि आप इस विषय पर गौर फरमावें। इसपर श्री जी महाराज ने फरमाया कि "थे कह चुका ?" तो मैंने कहा हां, संक्षेप में अर्ज कर चुका हूं। इस पर आप फरमाने लगे कि "थांका केई शब्द अनुचित है थां ने सोभा नहीं देवे"। मैंने कहा—मुझे तो ऐसा कुछ भी नजर नहीं आया आप फरमावें तो मालूम हो। तो आप फरमाने लगे कि "कूड़े करकट का शब्द थांने नहीं कहना चाहिये"। तब मैंने अर्ज की कि महाराज साहब, मैंने तो मकान में कूड़े करकट का शब्द बतौर औपमा (उपमा) के प्रयोग किया है तो आपने फरमाया कि औपमा के लिये भी ऐसे शब्द नहीं होने चाहिये जो सन्मान सूचक न हो। 'म्हे तो शास्त्रोंने बहुत सन्मान की दृष्टि से देखां हांनी'। इसपर मैंने कहा औपमा के रूपमे ऐसे शब्दों की बात मुझे तो कोई एतराज की नहीं नजर आई परन्तु आपको ठीक नहीं जचे तो मैं कूड़े करकट के शब्दों को वापिस लेता हूं। इनके स्थान मे आप कोई सुन्दर शब्द समझ लेवें। फिर श्री जी महाराज फरमाने लगे कि

प्रत्यक्ष में असत्य प्रमाणित होनेवाली शास्त्रों की कौनसी बात है—एक बात उदाहरण के तौर पर हमारे समक्ष रखो। तो मैंने अरज की कि जैन शास्त्रों में अनेक स्थानों में ऐसा लिखा है कि जम्बूद्वीप भर में बड़े से बड़ा दिन होता है तो १८ मूहूर्त्त से बड़ा कहीं नहीं होता और बड़ी से बड़ी राते होती है तो १८ मूहूर्त्त से बड़ी नहीं होती परन्तु लन्दन (London) शहर जहां व्यापार आदि के निमित्त अपने साथके अनेक लोग रहते है वहां पर २२।२३ मूहूर्त्त तक के बड़े दिन और रातें होती हैं। एक मूहूर्त्त ४८ मिनट का माना गया है। यह हालत तो लन्दन शहर की है इससे आगे जितना उत्तर की तरफ जाया जायगा उतने ही बड़े दिन और बड़ी रातें मिलेंगी। उत्तरी ध्रुव पर तो ६ महीने तक लगातार सूर्य दिखाई देता है। इस पर श्री जी महाराज ने फरमाया कि 'यह विचारने की बात है'। मैंने अर्ज की कि स्वामिन्, यह एक बात ही विचारने की नहीं है, सैकड़ों हजारों बात शास्त्रों में ऐसी है जो प्रत्यक्ष में असिद्ध हो रही हैं। मुझे कृपा करके आप बात करने का अवसर दिरावें। आपके समक्ष में एक एक करके सब रखू। तो श्री जी महाराज ने फरमाया कि पर्यूषण के पश्चात् इस विषय पर बातचीत की जायगी। मैंने अर्ज की कि मेरे लेखों को आप एक दफा पढ़ें तो उत्तम होगा। इसपर मेरे वे सब लेख पढ़ने के लिये दिये गये। कुछ कार्य बसात् मैं आसोज सुदीमें बम्बई जा रहा था तो श्री जी महाराज से वातचीत करने के

लिये समय दिलाने की प्रार्थना की तो आप फरमाने लगे कि अभीतक लेख पूरे देखे नहीं गये हैं। देख लेने के पश्चात् बातचीत करना ठीक रहेगा। कार्तिक वदि २ को मैं बम्बई पहुंचा। कार्तिक वदि ६ तारीख ७ अक्टूबर सन् १६४४ के दिन वहांपर जैनाचार्य श्री सागरानन्द सूरि जी महाराज—जो संस्कृत प्राकृत भाषा के प्रखर विद्वान और जैन शास्त्रों के पूरे ज्ञाता बताये जाते हैं—के दर्शन किये। वन्दना नमस्कार कर सुखसाता पूछने के पश्चात् उनसे भी मैंने अर्ज की कि महाराज, वर्त्तमान जैन-शास्त्रों मे अनेक बातें ऐसी हैं जो प्रत्यक्ष मे असत्य प्रमाणित हो रही हैं वे हटाई जानी चाहिये आदि। ऐसा परिवर्त्तन करने मे आप जैसे विद्वान आचार्यों की आवश्यकता है। सुन कर आचार्य महाराज फरमाने लगे कि प्रत्यक्ष मे असत्य प्रमाणित होने वाली बातें जैन शास्त्रों मे कोई नहीं है। सर्वज्ञों के वचन कभी असत्य हो सकते है ? कभी नहीं। मैंने कहा, महाराज जैन शास्त्रों में अनेक स्थानों में लिखा है कि जम्बूद्वीप में बड़े से बड़ा दिन होता है तो १८ मूहूर्त्त से बड़ा नहीं होता परन्तु लन्दन शहर मे २२।२३ मुहूर्त्त तक का बड़ा दिन होता है, और वहां से उत्तर की तरफ जावें तो और भी अधिक बड़ा होता है। यहां तक कि उत्तरध्रुव पर लगातार ६ महीने तक सूर्य दिखाई देता है। महाराज साहब फरमाने लगे कि यह तुम्हारे समझने की गलती है। शास्त्रों में कहा है कि बड़े से बड़ा दिन होता है तो जम्बूद्वीप भरमें १८ मुहूर्त्त से बड़ा कहीं नहीं

होता। तो भगवान् ने यह वचन कहां पर बैठे हुए कहा है? भारतवर्ष में बैठे हुऐ उन्होंने ऐसा कहा है; और भारतवर्ष में १८ मुहूर्त्त से बड़ा दिन नहीं होता यह सच्च बात है। इसलिये यह ठीक ही तो कहा है। मैंने कहा महाराज, उन्होंने कहा तो स्पष्टतः सारे जम्बूद्वीप के लिये है फिर हम भारत में बैठे कहनेसे ही सिर्फ भारतवर्ष के लिये कैसे समझ लें? इसपर महाराज साहब ने फरमाया कि नहीं, उन्होंने ठीक ही कहा है। शास्त्रों पर श्रद्धा रखनी चाहिये। इसपर से मैंने विचार लिया कि बात आगे बढ़ाने मे कोई लाभ नहीं। इसके पश्चात् कार्तिक बदि ८ के दिन जैनाचार्य श्री रामविजय जी महाराज साहब के शिष्य श्री मुक्तिविजय जी महाराज के दर्शन किये। उनसे जो वार्त्तालाप हुई वह तकरीबन आचार्य महाराज श्री सागरानन्द सूरि जी महाराज से मिलती हुई है। उन्होंने भी शास्त्रों पर श्रद्धा रखने पर ही जोर दिया। इसके पश्चात् बम्बई से वापसी मे कार्तिक बदि १२ के दिन अहमदाबाद में जैनाचार्य श्री रामविजय जी महाराज साहब से वार्त्तालाप हुई। सुना कि आचार्य महाराज संस्कृत प्राकृत के बड़े विद्वान और जैन शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता हैं। आचार्य महाराज से शास्त्रों के विकार को हटाने के लिये प्रार्थना की; परन्तु आपने भी शास्त्रों पर श्रद्धा रखने के लिये ही फरमाया। इसके पश्चात् कार्तिक बदि १४ के दिन जोधपुर में जैनाचार्य श्री ज्ञानसुन्दर जी महाराज—जिनको आजकल श्री देवगुप्त सूरि जी महाराज

भी कहते हैं, के दर्शन किये। वन्दना नमस्कार कर सुख साता पूछकर मैंने अपना परिचय दिया तो परिचय सुनते ही बहुत हर्षित हुए। उनसे भी मैंने शास्त्रों की असत्य बातों को हटाये जाने के लिये प्रार्थना की तो आप फरमाने लगे कि आपके लेख मैंने ध्यान-पूर्वक पढ़े हैं शास्त्रों की असत्य प्रमाणित होनेवाली बातों को हटाना नितान्त आवश्यक है ; वरना ऐसासमय आने वाला है कि इनके लिये पश्चात्ताप करना पड़ेगा। मैंने अर्ज की कि महाराज, आपने तो अपने जीवन में जैन साहित्य का बहुत बड़ा प्रकाशन किया है इस काम पर भी गौर फरमाकर किसी प्रकारकी योजना काम मे लावें। तो आप फरमाने लगे कि अब मैं बहुत वृद्ध हो गया हूं। मेरी सामर्थ्य वैसी नहीं रही, मेरी शक्ति के बाहिर की बात है। इसके पश्चात् कार्तिक सुदि १ के दिन मैं वापिस सुजानगढ़ पहुंचा। कार्तिक सुदि २ के दिन जैनश्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य महाराज साहब से बातचीत प्रारम्भ करने के लिये कृपा करने की प्रार्थना की तो श्री जी ने फरमाया कि आजकल समय की कमी है। मैं ध्यान में रखकर समय निकालूंगा। मिगसर वदि १ के दिन श्री जी महाराज का सुजानगढ़ से विहार हुवा। इन १५ दिनों के दरमियान मे श्री जी महाराज से दो तीन दफा बातचीत के लिये समय दिलाने के वास्ते प्रार्थना की ; परन्तु आपने फरमाया कि आजकल समय की बहुत कमी है। पोष वदि में रवाना होकर मैं दिसावर चला गया जिसका प्रथम चैत्र वदि १ के दिन

सुजानगढ़ वापिस आया। उस समय जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य महाराज सुजानगढ़ विराजते थे। मैंने फिर श्री जी महाराज से अर्ज की कि वार्त्तालाप के लिये अब समय निकालने की कृपा करावे ; परन्तु श्री जी ने उस समय भी यही फरमाया कि आजकल समय कम है। फिर कुछ दिन पश्चात् श्री जी महाराज का सुजानगढ़ से विहार हो गया। मुझे आशा है कि किसी समय श्री जी महाराज अवश्य समय निकाल कर वार्त्तालाप करने की कृपा करेंगे और जैन शास्त्रों में पाई जाने वाली असत्य बातों का या तो किसी प्रकार से समाधान करावेगे अथवा शास्त्रों में परिवर्त्तन करने की कोई योजना करेंगे। स्थानकवासी सम्प्रदायके आचार्य महाराज श्री गणेशीलालजी महाराज साहब जो बड़े विद्वान एवम् जैनशास्त्रों के ज्ञाता हैं और स्वभाव के बड़े सरल हैं उनसे इस विषय में कई दफा बातचीत हुई है। आपका फरमाना यह रहा कि शास्त्रों में परिवर्त्तन करना इस समय असम्भव बात है। कारण इस काम के लिये सर्व-प्रथम श्वेताम्बर जैनों के तीनों सम्प्रदायों को सरल चित्त से एक राय होकर सम्मिलित प्रयत्न करने की आवश्यकता है जिसका होना असम्भव प्रतीत होता है। श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय में मथुरा और वल्लभपुर में लगातार बारह वर्ष तक जिस प्रकार शास्त्रों के संकलन करने में भिन्न भिन्न स्थानों से भगवान वीरके शिष्य-मुनिराज आ-आकर अपनी अपनी याददास्त के अनुसार शास्त्रों के निर्माण में

सहयोग दिया था उसी प्रकार इस समय भी भगवान वीरके शिष्य कहलाने वालों को इन शास्त्रों के विषय में अपने अपने अनुभव तथा अपने अपने विचार और परिवर्त्तन हो सकने वाली बातों के लिये अपने अपने सुझाव रखते हुये सहयोग देकर इस कार्य को सफल करनेका प्रयास करना चाहिये। परन्तु इस समय तो ऐसी विषम अवस्था हो रही है कि व्यर्थके वाद-विवाद में समय का दुरुपयोग किया जा रहा है।

जैनाचार्यों की मेरे साथ हुई उपर की वार्त्तालाप से यह स्पष्ट अनुमान हो रहा है कि न तो शास्त्रों में प्रतीत होनेवाली असत्य बातों को हटा सकने का किसी में साहस है और न शास्त्रों को सत्य प्रमाणित कर सकने का प्रयत्न। वास्तव में जो बात असत्य हो, जबरदस्ती उसको सत्य प्रमाणित करना तो असम्भव भी है और अनुचित भी ; परन्तु उसको हटा सकने मे आना-कानी करना व्यर्थ की कमजोरी दिखाना है। वहमसे यह एक धारण बनाली गई है कि शास्त्रों की असत्य बातों को यदि असत्य स्वीकार कर लिया गया तो शेपकी बातों के लिये लोगों के हृदय में विश्वास जमाये रखना दूभर हो जायगा। परन्तु यह आशंका केवल आशंका मात्र है। लोंकाजी श्रावक के पहिले क्रमवार ४५ आगम सूत्रों की मान्यता थी परन्तु लोंकाजी ने उनमे से १३ आगम सूत्रों को बिना किसी पुष्ट प्रमाण के अमान्य कर दिया। लोंकाजी जैसे श्रावक के कथन से जब समूचे के समूचे १३ आगम अमान्य ठहराये जाकर लाखों

व्यक्तियों के हृदय में धर्म के प्रति विश्वास बना रह सकता है तो प्रत्यक्ष में असत्य प्रमाणित होने वाली बातों को निकाल देने में लोगों के विश्वास उठ जानेकी धारणा बनाये रखना केवल व्यर्थ का भय है। सत्य ही सर्वदा सत्य बने रह सकता है असत्य को सत्य बनाये रखना तभी तक सम्भव है जबतक लोगों में ज्ञान विज्ञान का अभाव है।

शास्त्रों की इस समय बड़ी विकट दशा हो रही है। श्वेताम्बर जैन कहलाने वाले मूर्तिपूजक स्थानकवासी और तेरापंथी तीनों सम्प्रदाय आगम सूत्रों में से ३२ सूत्रों को अक्षर अक्षर सत्य मान रहे है। सब कोई अपने अपने मतकी बात सिद्ध करते हुये इन्हीं सूत्रों के आधार पर एक दूसरे की बात का खन्डन करते हैं और एक दूसरे को अज्ञानी एवम् मिथ्यात्वी बतला रहे हैं। मूर्तिपूजक इन सूत्रों से मूर्तिपूजा करना आत्म कल्याण का साधन सिद्ध करते हैं और स्थानकवासी एवम् तेरापंथी इस विषय में दोनों एक तरफ रहकर मूर्तिपूजासे आत्मा का कल्याण तो दूर रहा एकान्त पाप होकर आत्मा पाप से भारीं होनेका कह रहे हैं। दान और दया के विषय में स्थानकवासी तथा मूर्तिपूजक दोनों एक होकर पुन्य और धर्म होनेका कथन कर रहे हैं और तेरापंथी इन दोनों के बताये हुए दान-दया से होने वाले पुन्य धर्म होने का खन्डन करके एकान्त पाप होने का कथन कर रहे हैं। आश्चर्य है कि जिन सूत्रों के आधार पर एक सम्प्रदाय वाले किसी के द्वारा मारे जाने वाले प्राणीको बचाने में धर्म मान

रहे हैं और दूसरी सम्प्रदाय वाले उन्हीं सूत्रों के आधार पर बचाने में तो पाप मान ही रहे हैं अपितु मारने वाले कसाई को "मतमार" ऐसा कहने तक में एकान्त पाप मान रहे हैं। किसी भी सम्प्रदाय पर यह आरोप करना तो सरासर मूर्खता होगी कि अमुक सम्प्रदाय के व्यक्ति स्वार्थी एवम् धूर्त्त हैं इसलिये अपने स्वार्थ के लिये अपने मतकी बात अमुक प्रकार से बता रहे हैं। कारण, अकेला एक व्यक्ति स्वार्थी अथवा धूर्त्त हो सकता है परन्तु जिन सम्प्रदायों में प्रत्येक में लाखों मनुष्य हों और सबके सब स्वार्थी एवम् धूर्त्त हों अथवा मूर्ख या अज्ञानी हों—यह असम्भव बात है और ऐसा समझना भी नितान्त मूर्खता है। आत्म कल्याण के लिये जिन संस्थाओं का जन्म हुआ है उन प्रत्येक के लाखों मनुष्यों में से बहुतसे आत्मार्थी एवम् बहुतसे विद्वान् सूत्रों की सच्ची रहस्य को समझने-समझाने वाले भी अवश्य होंगे, यह मानी हुई बात है। फिर ऐसा क्यों हो रहा है इसका कारण समझने की पूरी आवश्यक्ता है। कारण स्पष्ट है कि इन सूत्रों की लिखावट ही ऐसी बेढ़ब है कि एक विषयमें किसी स्थानमे पक्षकी बात कहदी है तो दूसरे स्थान में उसीके विपक्ष की कह दी है। एक स्थानमें विधि कर दी है तो दूसरे स्थानमे उसीका निषेध कर दिया है। स्थान स्थान पर ऐसे सन्दिग्ध और शंका-कारक कथन हैं कि जो जैसा चाहता है अपने मतकी पुष्टिके लिये वैसा ही प्रमाण निकाल सकता है। अन्यथा ऐसा नहीं होता कि एक ही सूत्रोंको

माननेवाले परस्पर इतना भिन्न २ कथन करते कि एक जिसको धर्म कहता दूसरा उसीको एकान्त पाप कहता।

इस प्रकार की स्थितिका श्रावक समाज पर वहुत वुरा और कटु असर पड़ रहा है। मूर्तिपूजक और स्थानकवासी श्रावक तेरापंथी श्रावक से एक बिरादरी होने पर भी साख-सगपन करने में परहेज करते है और तेरापंथी श्रावक स्थानकवासी और मूर्ति-पूजक श्रावक से साख-सागपण करने में परहेज करते है। एक दूसरेके सामाजिक सम्बन्धों में पूरी कटुता आती जा रही है। परन्तु न जाने श्रावक सामाज की वुद्धि और विवेक को क्या हो गया है कि उसे यह भी नहीं सूझती कि कमसे कम अपने सामाजिक हितों की रक्षाका तो विचार रखें। श्रावक समाज को चाहिये कि मुनि समाज से प्रार्थना करे कि आप तीनों सम्प्रदायके मुनि ३२ सूत्रों को एक सा अक्षर अक्षर सत्य मानते हैं और इन वतीसों के आधार पर एक जिस कार्य के करने में धर्म बताता है तो दूसरा उसीमें एकान्त पाप वता रहा है। हमारे लिये पाप धर्मका मार्ग दिखाने वाले आपलोग है अतः आप लोगों को चाहिये कि सव एकत्रित होकर विवादास्पद बिषयों के लिये अच्छी तरह शास्त्रार्थ करके निर्णय करें और एक राय हो जायें। इसपर भी यदि वे ऐसा करना नहीं चाहते हों तो हमरा कर्त्तव्य है कि हम इन सूत्रोंके विवादास्पद विपयों का निर्णय कराने के लिये एक संस्था स्थापित करें और उस संस्थाके द्वारा योजना करके जैन कहलाने वाले वड़े बड़े विद्वानों

द्वारा इनका निर्णय करावें। क्या कारण है कि समाज में इतनी जबरदस्त विषमता फैलानेवाले विषयों के लिये तो हम लोगों ने खामोशी अख्तियार कर रखी है और भूतकाल मे वीती हुई व्यर्थ की वातों के लिये सव एक होकर आकाश पाताल के कुलावे मिलाने लगते हैं। थोड़े ही दिनों की वात है, श्री धर्मानन्द कोसाम्वी ने किसी पुस्तक मे यह लिख दिया था कि जैन शास्त्रों में साधु के लिये मांस आहार लाने का कथन है। वस इसी पर सव मिलकर कोसाम्वी जी को कोसने लगे। अभी तक भी इस विषय पर लेख पर लेख निकलने का तांता जारी है। शास्त्रों में जहां मांस शब्द आया है उसको येन-केन-प्रकारेण वनस्पति सिद्ध करने की धींगामस्ती की जा रही है। मांस से यदि आपत्ति है तो उन स्थानों से मांस शब्द को ही क्यों नहीं हटा दिया जाता न रहेगा वांस न वजेगी वांसुरी'।

जिन जिन स्थानो में असत्य, अस्वाभाविक, असम्भव और परस्पर विरोधी वचन जैन शास्त्रों मे आये है उन्हे हटा देना और जिन जिन विधि-निषेधों से मानव समाज की व्यवस्था विगड़ती है उन्हे निकाल वाहिर करना परम आवश्यक है। इनके हटा देने और निकाल वाहिर करने से न तो धर्म की वातों पर से लोगों का विश्वास ही उठ जायगा और न किसी प्रकार की हानि ही होगी वल्कि जैन शास्त्रों का संशोधन हो कर वे शुद्ध हो जायेंगे। इसलिये सारे जैन शासन के

आचार्यों तथा विद्वान् सन्त-मुनिराजों एवम् समझदार श्रावकों से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि वे इस सम्बन्ध में कोई सुन्दर योजना बनाकर काम में लावें और जैन शास्त्रों के भविष्य को उज्ज्वल करें।

परिशिष्ट

'तरुण जैन' दिसम्बर सन १९५१ ई०

'लोक' के कथित माप का परीक्षण

[ले० श्री मूलचन्द वैद, लाडनूँ]

जैन मतानुसार समस्त विश्व लोक और अलोक में विभाजित है। लोक सीमित है और अलोक असीमित। दूसरे शब्दों में अलोक में लोक निहित है। लोक में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल ये छः मूल द्रव्य हैं एवं अलोक में केवल आकाशास्तिकाय है। लोक की ऊपरी और तल की सीमाएँ क्रमशः सिद्धशिला और निगोद हैं। मोटे तौर पर कमर पर हाथ दिये पैर फैला कर खड़े हुये मनुष्य के आकार का सा लोक माना गया है।

यह लोक तल से सिरे (bottom to top) अर्थात् निगोद से सिद्धशिला तक १४ रज्जू लम्बा है। तल में ७ रज्जू चौड़ा है—वहां से क्रमानुसार घटते घटते सात रज्जू की ऊँचाई पर १ रज्जू चौड़ा है। वहा से ३॥ रज्जू ऊपर क्रमशः वढ़ते वढ़ते ५ रज्जू चौड़ा और वहां से सिरे पर क्रमशः घटते घटते फिर १ रज्जू चौड़ा है। घटा-वढ़ी की तीन सन्धियों के आधार पर लोक के तीन भाग हो जाते हैं –

१–अधोलोक—निगोद से पहले नरक तक

२–मध्यलोक—पहले नरक से ज्योतिर्मण्डल तक

३ ऊर्ध्वलोक—ज्योतिर्मण्डल के ऊपर से सिद्धशिला तक

उक्त माप की अपेक्षा से लोक का घन रज्जू फल ३४३ वताया गया है, जो समस्त जैनियों को मान्य है। यदि यह कोई आध्यात्मिक वात होती तो इसका सम्पूर्ण परीक्षण असम्भव हो जाता और साथ में निरर्थक भी, किन्तु एक गणित के तथ्य

को जांच की कसौटी पर कसना कोई कठिन उलझन नहीं है। हम यहां इसी बात को लेकर परीक्षण आरम्भ करेंगे कि कथित ३४३ घन रज्जू का हिसाब कहां तक एक गणित-सत्य (mathematical truth) है।

लोक का आकार तीन तरह से व्यक्त किया जा सकता है, जो नं० १, २, ३, के रूप में नीचे दिखाया गया है:—
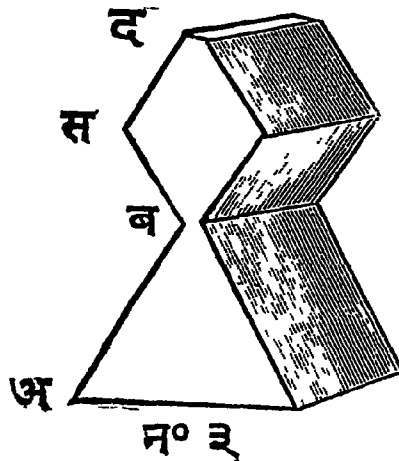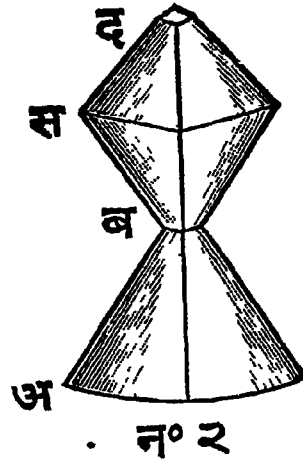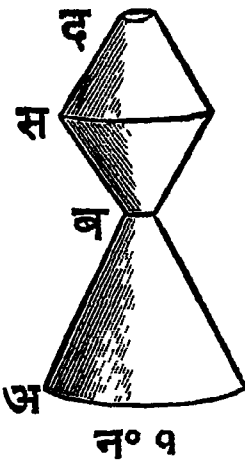
नं० १ में स्थान अ—७ रज्जू वृत्ताकार, ब—एक रज्जू वृत्ताकार, स—५ रज्जू वृत्ताकार और द-एक रज्जू वृत्ताकार है।

नं० २ में स्थान अ—७ रज्जू वर्गाकार (square), ब—एक रज्जू वर्गाकार, स—५ रज्जू वर्गाकार और द—एक रज्ज वर्गाकार है।

नं० ३ में स्थान अ—७ रज्जू वर्गाकार ब—१×७ रज्जू लम्बाकार (oblong), स—५×७ रज्जू लम्बाकार और द—१×७ रज्जू लम्बाकार है।

नं० १ के आकार को ही मान्य समझा जाता है और उसे ही ३४३ घन रज्जू बताते है।

उक्त तीनों आकारों का घन रज्जू निकाल कर हम देखें कि इनमें कितना अन्तर मिलता है। किसी भी समचतुष्कोण या गोल पिण्ड अथवा खात, जिसके मुख और तल का क्षेत्रफल भिन्न हो और $\frac{\text{ऊंचाई}}{\text{या गहराई}}$ समान हो, का घनफल इस प्रकार निकलता है—

मुखका क्षेत्रफल+तल का क्षेत्रफल+मुख तल की लम्बाई चौड़ाई का संयुक्त क्षेत्रफल÷६× $\frac{\text{ऊंचाई}}{\text{या गहराई}}$ =पिण्ड या खात का घनफल।

नोट—वृत्त का क्षेत्रफल उसके व्यास के क्षेत्रफल का .७८५४

होता है। उक्त रीति से निकाले गये कथित तीनों आकारों के क्षेत्रफल क्रमशः निम्न है :—

नं० १—१६१.२६८८ घन रज्जू

नं० २—२०५.३ घन रज्जू

नं० ३—३४३ घन रज्जू

शास्त्रोक्त लोक-वर्णन को देखते हुये नं० २ और ३ के आकार में निम्न विरोधाभास उपस्थित होते हैं, अतः वे मान्य नहीं हो सकते :—

नं० १

(अ) मध्य में लोक एक रज्जू समचतुष्कोण रहता है। किन्तु द्वीप समुद्रों को वलयाकार मानने से अन्तिम स्वयंभू रमण समुद्र बाहर की तरफ से चतुष्कोण ठहरता है जो शास्त्रसंगत नहीं है।

नं० २

(अ) मध्य में लोक चारों तरफ से एक रज्जू नहीं रहता है।

(ब) मध्य में एक ओर एक एवं दूसरी ओर सात रज्जू रहने पर अनुक्रम से चारों तरफ से घटने वाली बात युक्तियुक्त नहीं बैठती।

अंग्रेजी में एक कहावत है कि Numbers speak of themselves अर्थात् आंकड़े स्वयं बोलते हैं। अपितु गणित

की कसौटी में कोई संशय नहीं रह सकता। अभिधान राजेन्द्र कोषकार के अनुसार कर्मग्रन्थ में लोक के माप के सम्बन्ध में यों लिखा है—

"चउदस रज्जू लोओ, वुढ्डिकओ होई सत्त रज्जू घणो।"

किन्तु उक्त माप सिद्ध न होने से सही कैसे मान लिया जाय? जब कितने ही जैन-विद्वानों के सामने यह विरोधाभास रक्खा गया तो उन्होंने या तो केवल-ज्ञानियों के जिम्मे इसका निराकरण रख कर बात खतम कर दी; या उल्टे प्रश्न करने वाले को कहा कि ऐसा तरीका निकालो जिससे ३४३ घन रज्जू सिद्ध हो जाय। पता नहीं, ऐसे मोटे प्रश्नों को इतनी उपेक्षा की दृष्टि से क्यों देखा जाता है? सत्य के साधकों को किसी भी प्रकट सत्य को स्वीकार करने में हिचकिचाहट क्यों? आशा है कोई विज्ञ महानुभाव इस विरोधाभास के सम्बन्ध में अपनी सम्मति प्रकट करेंगे जिससे वस्तुस्थिति का पता चल सके।

'जैन जगत्' १ अक्टूबर सन् १९३० ई०

शास्त्र और तर्क

दुनियाँमें शास्त्र इतने ज़्यादः और विविध हैं कि अगर मनुष्य शास्त्रोंके आधार पर निर्णय करना चाहे तो वह मरते दम तक किसी बातका निर्णय न कर सकेगा। सभी शास्त्र अपना सम्बन्ध ईश्वर या उसीके समान किसी परमात्मा या ऋषिसे बतलाते हैं, और प्रायः सभी एक दूसरेके निन्दक है। ऐसी हालतमें जब लोग शास्त्रों पर ही निर्णयका सारा बोझ डाल देते हैं तब उनके पागलपन पर हँसी आती है या उनकी मूर्खता पर आश्चर्य होता है। बहुतसे पढ़े लिखे और पंडित कहलानेवाले लोगोंमें भी यह पागलपन और मूर्खता पाई जाती है, परन्तु इससे सिर्फ़ इतना ही सिद्ध होता है कि बहुतसे लोग पढ़ लिख जाने पर और पंडित हो जाने पर भी पागल और मूर्ख बने रहते हैं।

हमारे बाप दादे जैनी थे, इसलिये हम भी जैनी बन गये हैं। बने क्या? बना दिये गये हैं। अगर हमसे कोई पूछे कि "तुम अपने शास्त्रोंका ही विश्वास क्यों करते हो? वेद कुरान, बाइबिल और पिटकत्रयका विश्वास क्यों नहीं करते?" तो उत्तर मिलेगा कि "हमारे शास्त्र भगवान् महावीरके बनाये हुए है, वे वीतराग और सर्वज्ञ थे, कषाय और अज्ञानतासे ही मनुष्य झूठ बोलता हैं, जिसमें ये दोनों नहीं हैं वह झूठ क्यों

बोलेगा ? इस पर कोई कहे—"महावीर ही वीतराग सर्वज्ञ थे, बुद्ध वीतराग सर्वज्ञ नहीं थे, यह बात कैसे मानी जाय ?" तो अन्तमें उत्तर मिलेगा कि "शास्त्रमे लिखा है"। यह तो अन्योन्याश्रय दोष हुआ। क्योंकि शास्त्र तबसच्चे माने जाय जब महावीर सच्चे सिद्ध हों और महावीर तब सच्चे माने जायँ जब शास्त्र सच्चे सिद्ध हों। इसलिये शास्त्र न तो अपनी प्रमाणता सिद्ध कर सकते हैं, न अपने उत्पादक की। अगर वे स्वतः प्रमाण माने जायँ तो दुनिया भरकी सभी पोथियाँ प्रमाण हो जावेंगी। ऐसी हालतमें जैनशास्त्रोंमे कोई विशेषता न रहेगी। इसके अतिरिक्त एक दूसरा प्रश्न यह भी खड़ा होता है कि शास्त्रोंके नाम पर जो वर्तमानमे जैनसाहित्य प्रचलित है उसमें कौनसी पुस्तक भगवान् महावीरकी बनाई हुई है ? एक भी पुस्तक ऐसी नहीं है जो महावीर रचित हो। यहाँ तक कि भगवान् महावीरके पाँच सौ वर्ष पीछेकी भी कोई पुस्तक नहीं मिलती। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें प्रचलित ३२ या ४५ सूत्रग्रंथ महावीर स्वामीके शिष्य गौतम गणधर रचित बताये जाते हैं, परन्तु इनकी भाषा भगवान् के समय की भाषा नहीं है। यह महाराष्ट्री प्राकृत है, इसमे मागधीका सिर्फ़ एकाध ही प्रयोग है। दूसरी बात यह है कि जैनशास्त्रोंके अनुसार भगवानके १६२वर्ष पीछे तक उनका उपदेश पूर्णरूपसे सङ्कलित रहसका ; इसके बाद तो लुप्त होने लगा और उसमें बाहिरी या सामयिक साहित्य भी मिलने लगा। क़रीब हजार

वर्ष तक यही गड़बड़ी रही। दिगम्बरोंने तो उनका मानना ही छोड़ दिया। श्वेताम्बर उसे मानते रहे। पाँचवीं छट्ठी शताब्दीमें इस साहित्य की जो कुछ विकृत अविकृत सामग्री इधर उधर पड़ी थी उसका सङ्कलन देवर्धि गणीने किया। इसके बाद फिर इन ग्रन्थोंमें मिलावट नहीं हुई, परन्तु प्रारम्भ के हजार बारह सौ वर्षोंमें जो विकृति होती रही है उससे यह शुद्ध वीरवाणी नहीं कही जा सकती। मतलब यह है कि एक तरफ़ तो शास्त्रों के आधार पर महावीरकी वीतरागता और सर्वज्ञता नहीं मानी जा सकती और दूसरी तरफ़ ये शास्त्र शुद्ध वीरवाणी सिद्ध नहीं होते। ऐसी हालतमें शास्त्रोंके सहारेसे हमें धर्मका ठेका कैसे मिल सकता है ? और जब शास्त्र इतने असमर्थ हैं तब हमें उनकी दुहाई क्यों देना चाहिये ?

यह बिकट समस्या आज ही उपस्थित हुई है या वर्त्तमान सुधारकोंने ही उपस्थित की है, यह बात नहीं हैं। पुराने लेखकोंके समक्ष भी यह समस्या थी। उनने इस समस्याको सुलझाया भी है और अच्छी तरह सुलझाया है। या यों कहना चाहिये कि यह समस्या भगवान् महावीरने ही सुलझादी है। वे किसी व्यक्तिको, या किसी शास्त्रको देवत्व या आगमत्वका ठेका नहीं देते ; वे प्रत्येककी परिभाषा बनाते हैं और उसी कसौटी पर कसनेकी सबको सलाह देते हैं और फिर कहते हैं—"बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदल निलयं केशवं वा शिवं वा।"

जब उनसे पूछा जाता है कि तुम्हारे भगवान् सच्चे क्यों ? तो वे उत्तर देते हैं कि उनके वचन सच्चे हैं। परन्तु जब पूछा जाता है कि वचन सच्चे कैसे माने जायं ? तो कहते हैं—"तर्क से परीक्षा करलो"। वे आजकल के मूर्ख पंडितों के समान वचनोंकी प्रमाणताके लिये भगवान् की दुहाई देकर, अन्योन्याश्रयके फंदेमें नहीं आते बल्कि तर्कके वज्रदण्डसे अन्योन्याश्रय चक्रक और अनवस्थाका कचूमर निकाल देते हैं।

इससे मालूम होता है कि आप्त और आगमका मूल आधार या रक्षक तर्क है। सोना बहुमूल्य भले ही हो परन्तु उसकी बहुमूल्यता की चोटी कसौटी के हाथमें है। तर्कके बल पर ही हम जैन धर्म को सर्वोत्तम धर्म और वीरवाणीको सर्वोत्तम आगम कह सकते हैं। अगर तर्कका सहारा छोड़ दिया जाय तो आगमका और आप्तका कुछ मूल्य नहीं रहता।

जब समन्तभद्रने आगम का स्वरूप बतलाया तब यह नहीं कहा कि द्वादशांगवाणी या अमुक ग्रन्थोंको शास्त्र कहते हैं। उनने तो यही कहा कि "आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्ट विरोधकम्। तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथ घट्टनम्"॥

"जो आप्त (यथार्थ वक्ता) का कहा हुआ है, जो सबके मानने योग्य है, प्रत्यक्ष और अनुमानादिसे जिसमें विरोध नहीं आता अर्थात् जो युक्ति सङ्गत है, जो यथार्थ वस्तुका प्रतिपादक है, सबका हित करने वाला है, और मिथ्यामार्गका नाशक है, वही शास्त्र है"।

यह श्लोक, सिद्धसेन दिवाकरके न्यायावतार ग्रन्थमें भी पाया जाता है इसलिये श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार भी शास्त्रका यही लक्षण कहलाया। अब यहां विचारणीय बात इतनी और है कि इनमें से बहुतसे विशेषण ऐसे हैं जिनका सद्भाव या अभाव किसी शास्त्रमें जानना मुश्किल है। अमुक पुस्तक आप्त वचन है और अमुक नहीं इसका निर्णय कौन करे? इसी तरह सर्वहितैषिता, यथार्थ प्रतिपादकता मिथ्यामार्ग नाशकता भी किसी भी शास्त्रमें विवादास्पद हो सकते हैं। ये सब ऐसी बातें हैं जो शास्त्रोंसे नहीं, किन्तु तर्क [युक्तिप्रमाण] से ही सिद्ध हो सकती है। कहनेको तो सभी शास्त्र, अपनेको उपर्युक्त सबगुण सम्पन्न बताते हैं। इसलिये किसको सच्चा माना जाय इसका उत्तर तर्क ही दे सकता है। उपर्युक्त लक्षण मे भी 'प्रत्यक्ष अनुमानसे अविरुद्ध' विशेषण पड़ा है और यही यथार्थताके निर्णय की कुञ्जी है। जो बात प्रत्यक्ष अनुमानसे विरुद्ध है और वह अगर किसी शास्त्रमें लिखी है तो समझलो कि वह शास्त्र झूठा है या उसमें वह झूठी बात मिलाई गई है। फिर भलेही वह शास्त्र भगवान महावीरके नामसे ही क्यों न बना हो।

अगर हम अपनेको सम्यग्दृष्टि मानते हैं तो हमें उन्हीं शास्त्रों पर या उन्हीं वचनों पर विश्वास करना चाहिये जो प्रत्यक्ष अनुमानादि से अविरुद्ध हों। संस्कृत प्राकृत आदिमें बनी हुई सभी पुस्तकें शास्त्र नहीं हैं, किन्तु सच्चे शास्त्रको

खोज निकालनेके साधन हैं। जिस प्रकार एक जज, अनेक गवाहोंकी बातें सुनकर अपनी बुद्धिसे सत्य असत्यका निर्णय करता है उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यको शास्त्रोंकी बातें सुनकर सत्यासत्यका निर्णय करना चाहिये। जिस प्रकार प्रत्येक गवाह ईश्वरकी क़सम खा कर सच बोलनेकी बात कहता है परन्तु गवाहों के परस्परविरुद्ध कथन से तथा अन्य विरुद्ध कथनोंसे उनमें अनेक मिथ्यावादी सिद्ध होते हैं उसी प्रकार अनेक शास्त्र महावीर या किसी परमात्माकी दुहाई देने पर भी परस्पर विरुद्ध कथनसे या युक्तिविरुद्ध कथनसे मिथ्या सिद्ध हो सकते हैं। इसलिये शास्त्रके नामसे ही धोखा खा जाना अज्ञानता है।

यह समझना कि 'शास्त्रकी परीक्षा तो हम तब करें जब हमारी योग्यता शास्त्रकारोंसे ज्याद: हो' भूल है। शास्त्रकारों के सामने हमारी योग्यता कितनी भी कम क्यों न हो, हम उनके शास्त्रोंकी जाँच कर सकते हैं। गायन में हमारी योग्यता बिलकुल न हो तो भी दूसरे मनुष्यके गानेका अच्छा बुरापन हम जान सकते हैं। मिठाईके स्वादकी परीक्षा करनेके लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम मिठयासे ज़्याद: या उसके बराबर मिठाई बनानेमे निपुण हों। हम व्याख्यान देना बिलकुल न जानते हों, फिर भी दूसरोंके व्याख्यानकी समालोचना कर सकते हैं। यदि ऐसा न होता तो आज हम अपनेको स्वाभिमानके साथ जैनी क्यों कहते ? जब हम महावीरसे ज्याद: ज्ञानी नहीं

हैं तब उनके धर्मको सच्चा या झूठा कैसे कह सकते हैं ? अगर हम उसे सच्चा कहते हैं तो अल्पज्ञानी होने पर भी हमारी परीक्षकता सिद्ध होती है। इसलिये हमें शास्त्रके नाम पर पागल न होकर परीक्षा करना चाहिये। और जो बातें युक्तियों या मूल सिद्धान्त से विरुद्ध जचें उसे शास्त्र बचन न समझना चाहिये। अगर हम इतना नहीं कर सकते तो दुनियाँ के मिथ्यामतावलम्बियों से हममें कोई विशेषता नहीं है। हमारा सत्यता का अभिमान झूठा घमंड है।

कहा जा सकता है कि "यदि ऐसा है तो आज्ञा-सम्यक्त्वी के लिये कोई स्थान ही नहीं है"। यहाँ हमें आज्ञाप्रधानीका स्वरूप समझ लेना चाहिये। आज्ञासम्यक्त्वी आज्ञा को प्रधान स्थान देता है और परीक्षाको गौण। परन्तु किसकी आज्ञा मानना, इस विषयमें तो उसे भी परीक्षासे काम लेना पड़ता है। आज्ञाप्रधानी का यह मतलब नहीं है कि वह चाहे जिस शास्त्रकी आज्ञा मानता फिरे। ऐसी हालतमें तो आज्ञा-प्रधानी और वैनयिकमिथ्यात्वी में कुछ भी अन्तर न रहेगा। बात यह है कि आज्ञाप्रधानी विशेष बुद्धिमान या विद्वान् नहीं होता। इस लिये उसे बहुतसी बातें आज्ञासे ही मानना पड़ती हैं। परन्तु प्रारम्भमें शास्त्राशास्त्र धर्माधर्म आदिका निर्णय तो करता ही है। साथ ही उसमें जितनी विद्या बुद्धि होती है उतनी परीक्षा भी करता है। परीक्षा करनेकी योग्यता होने पर भी अगर वह परीक्षासे काम न ले तो मिथ्यात्वी है। जिस

प्रकार परीक्षाप्रधानी भी थोड़ो बहुत आज्ञा का उपयोग करता है उसी प्रकार आज्ञाप्रधानी परीक्षा का भी उपयोग करता है। हाँ, परीक्षाप्रधानीका दर्जा ऊँचा है, इसलिये परीक्षाप्रधानी को जहाँ तक बने आज्ञाकी तरफ न झुकना चाहिये क्योंकि इससे उसका अधःपतन होगा और आज्ञाप्रधानीको आज्ञा ही मानकर न रह जाना चाहिये क्योंकि इससे उसकी उन्नति रुकेगी।

जिस प्रकार जैनकुल मे उत्पन्न होनेसे या जैनधर्मका पक्ष होनेसे किसीको श्रावक कहने लगते हैं परन्तु इससे वह पंचम-गुणस्थानवर्ति नहीं हो जाता, इसी प्रकार आज्ञामात्रसे कोई सम्यक्त्वी नहीं हो जाता। जिस प्रकार श्रावकों में नाममात्रके पाक्षिक श्रावकका उल्लेख किया जाता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि-योंमें नाममात्र के आज्ञासम्यक्त्वीका उल्लेख किया जाता है। खैर, पाठकोंको इतना ध्यानमें रखना चाहिये कि जिस विषयमें मनुष्य परीक्षा नहीं कर सकता, विरुद्धाविरुद्धता नहीं जान सकता वहीं आज्ञासे काम लेना चाहिये। कोई आज्ञा सिद्धान्त से विरुद्ध जाती हो. पक्षपातयुक्त मालूम पड़ती हो, युक्तिविरुद्ध हो तो वह शास्त्रमें लिखी होने पर भी कुशास्त्रकी चीज है। उस पर श्रद्धान करना मिथ्यात्वी हो जाना है।

किसी धर्म के शास्त्रों द्वारा धर्माधर्म और सत्यासत्य का निर्णय करने के पहिले हमे उस धर्मके मूल सिद्धान्त जान लेना चाहिये, और उसके सूक्ष्म विवेचनोंको उस धर्मके मूलसिद्धान्तों की कसौटी पर कसना चाहिये। यदि वे उस धर्म के मूल-

सिद्धान्तके अनुकूल उतरें तब तो ठीक, नहीं तो उन्हें अधर्म समझना चाहिये। जैसे जैनधर्मके चारित्रके विवेचनको लीजिये। जैन धर्मके अनुसार रागद्वेषका दूर करना चारित्र है इसलिये व्यवहार में उन क्रियाओंको भी चारित्र कहते हैं जिनसे रागद्वेषकी हानि होती है। हिंसा न करने से, झूठ न बोलने से, चोरी न करने से, ब्रह्मचर्य से, परिग्रहके त्यागसे, कषायें कम होती हैं इसलिये ये पाँचों चारित्र कहे जाते हैं। इन पाँचोंमें से अगर किसी के भीतर कोई जटिल समस्या उत्पन्न होती है तो उसका निर्णय कषाय-हानि रूप कसौटी से कर लेना चाहिये। शास्त्रोंमें त्रिकालवर्ती अनन्त घटनाओंका और अनन्त आचारोंका विवेचन तो हो नहीं सकता, इसलिये अगर कोई नयी पुरानी समस्या हमारे साम्हने खड़ी हो तो उसका निर्णय मूल शिद्धान्तके अनुसार करना चाहिये ; शास्त्रों के ऊपर न छोड़ना चाहिये। कल्पना करलो, कोई आचार कषायों का कम करने वाला है, लेकिन शास्त्रोंमें उसका उल्लेख नहीं है अथवा अस्पष्ट उल्लेख है, अथवा किसी लेखकने उसकी विधि और किसीने विरोध कर दिया है तो ऐसी हालतमें उस आचार के विरोधी शास्त्रोंको दृढ़ता के साथ असत्य कह देना चाहिये, क्योंकि शास्त्रोंमें लिखे जाने से सत्य की महत्ता नहीं है किन्तु सत्य के होने से शास्त्रों की महत्ता है। जो निःसत्य है वह निःसत्व है। इसी तरह अगर कोई आचार-नियम कषायों का बढ़ाने वाला है या शुभ से हटाकर अशुभ

में ले जाने वाला है, उसका विधान अगर किसी ग्रंथ में पाया जाता होतो वह ग्रंथ तुरन्त अप्रमाण समझ लेना चाहिये। अब हम अपने वक्तव्य को ज़रा और स्पष्टतासे रखना उचित समझते हैं।

अहिंसा सत्य आदि के समान ब्रह्मचर्य भी एक प्रकारका धर्म है, क्योंकि उससे रागादि कषायें कम होती हैं। इसलिये इस विषय की जो क्रिया रागादि कषायों को कम करने वाली हैं वह धर्म है; कषायों को बढ़ाने वाली हैं वह अधर्म है। यदि इन नियमों में कोई लोकाचार की क्रियाएँ मिला दी जायँ तो उसकी क्रिया लोकाचार के मुआफिक ही होगी न कि धर्म के मुआफ़िक। धर्म उतना ही है जितनी कषाय की निवृत्ति होती है। अगर किसी पुरुष के हृदयमें स्त्री राग उत्पन्न हुआ तो उसे रोकना ब्रह्मचर्य है। अगर उसे वह पूर्ण रूपसे रोकले तो महाव्रत हो जायगा। अगर वह पूर्ण रूपसे न रोक सके किन्तु किसी सीमाके भीतर आजाय तो अणुव्रत कहलायगा, क्योंकि इससे उसकी राग परिणति सीमित करनेके लिये उसने एक स्त्री को चुन लिया अर्थात् विवाह कर लिया तो यह ब्रह्मचर्याणुव्रत कहलाया। वह एक स्त्री चाहे कुमारी हो चाहे विधवा, ब्राह्मनी हो या शूद्र, आर्य हो या म्लेच्छ, स्वदेशीय हो या विदेशीय, उससे रागपरिणति न्यून होनेमे कोई वाधा नहीं आती। अपनी सांसारिक सुविधाके लिये इनमेंसे किसी खास तरह का चुनाव क्यों न किया जाय परन्तु धार्मिक दृष्टिसे उनमे

कोई अन्तर नहीं है। सुन्दर, सुशिक्षित सुशील स्त्री का चुनाव करना इसलिये ठीक होगा कि उससे रागपरिणति को सीमित रखने में सुविधा होगी, अर्थात् उसके उच्छृंखल होने का कम डर रहेगा। खैर, अब यदि कोई यह कहे कि "कुमारी और सवर्णा अर्थात् सजातीयाके साथ विवाह करना चाहिये, बिधवा या असवर्णा आदि के साथ विवाह करने से पाप होगा," तो इसका निर्णय करने के लिये पहिले हमें शास्त्र न टटोलना चाहिए बल्कि पहिले विचारना चाहिये कि विधवा और असवर्णा के साथ विवाह करनेसे विवाहके मूल उद्देश में क्या कुछ बाधा आती है ? विवाह का मूल उद्देश है संसार भर की स्त्रियों से अपनी विशिष्ट राग परिणति को हटाकर किसी एक जगह सीमित कर देना। यह बात तो विधवाविवाह और असवर्णविवाह में उसी तरह होती है जैसीकि कुमारी विवाह और सवर्णविवाहमें। इससे मालूम हुआ कि इससे मूल उद्देश में कुछ बाधा नहीं आती। अब इस निश्चयके विपरीत जिस जिस ग्रंथ में लिखा हो, समझलो कि वे सब कुशास्त्र हैं, अर्थात् उनका यह वक्तव्य धर्मविरुद्ध है। इसपर कोई कहेगा कि अगर ऐसा है तो "अभक्ष्य भक्षण भी जायज़ कहलायगा क्योंकि इससे मूल उद्देश बुभुक्षापूर्ति तो हो जाती है, तथा इसी तरह अन्य निकृष्ट वस्तुएँ भी ग्राह्य हो जावेंगी"। यह कहना नहीं, क्योंकि अभक्ष्यभक्षण, भूख बुझाने का काम करता है इसलिये जो बुभुक्षापूर्ति नामक धर्म के पालन करने वाले हैं

उनके लिये वुभुक्षापूर्ति मूल उद्देश है। परन्तु यहाँ तो मूल उद्देश रागादि कषायों को कम करना या अहिंसादि पाँच यम है। अभक्ष्यभक्षण से हिंसा होती है इसलिए वह मूल उद्देश का विघातक ही है। रही निकृष्टता की बात, सो यदि वह वस्तु मूल उद्देशकी वाधक नहीं है तो निकृष्ट हो ही नहीं सकती। अब रही लौकिक निकृष्टता (जूनी पुरानी अल्पमूल्य आदि) सो ऐसी निकृष्टता धार्मिकता में बाधक नहीं है, वल्कि कभी कभी तो वह साधक हो जाती है। एक आदमी नये मकान, और नये ठाट-बाठ की कोशिश करता है। दूसरा आदमी पुराने मकान और पुराने ठाठबाठ में ही संतोष कर लेता है। ऐसी हालतमें दूसरा आदमी ही ज्याद: धर्मात्मा है। इसलिए निकृष्टता का आरोप भी बिलकुल व्यर्थ है।

खैर, शास्त्र परीक्षा के कुछ और उदाहरण देखिये। यह बात सिद्ध है कि कामवासना को सीमित करने के लिये विवाह है। अगर किसी में यह वासना पैदा ही न हुई होतो उसका विवाह करना कामवासना का सीमित करना नहीं है वल्कि पैदा करना है। अब्रह्मसे ब्रह्मकी तरफ़ झुकना तो धर्म है और ब्रह्मसे अब्रह्मकी तरफ़ झुकना पाप है। यह तो कषायों का बढ़ाना है। अब यदि कोई कहे कि "कामवासना पैदा हुई हो चाहे न पैदा हुई हो, परन्तु अमुक उम्रके भीतर विवाह कर ही देना चाहिये, विवाह न करनेसे पाप होगा"। तो समझ लो ऐसा कहने वाला कोई पाप-प्रचारक धूर्त है। और

अगर वह किसी शास्त्र की दुहाई देता है तो समझलो कि वह शास्त्र कुशास्त्र है। इसी तरह शूद्रोंको धर्म क्रियाएँ न करने देना, सूतक आदि में धर्म क्रियाओंका रोकना भी पाप है क्योंकि इससे अशुभ प्रवृत्तिसे शुभप्रवृत्तिमें जानेसे रोका जाता है, कषायोंको शान्त करने के साधन छीने जाते हैं। यह कार्य मूल सिद्धान्तोंके बिलकुल विरुद्ध है, इसलिये घोर पाप है। अगर किसी पुस्तकमें ऐसी अधार्मिक आज्ञाएँ लिखी हों तो समझलो वह पापी ग्रन्थ है। उसे शास्त्र मानना घोर मिथ्यात्व है।

थोड़े से उदाहरण देकर हमने शास्त्रोंकी परीक्षाका तरीक़ा बतलाया है। इस तरीक़े से मनुष्य कभी धोखा नहीं खा सकता। और यह तरीक़ा है भी इतना सरल, कि बिलकुल अपढ़ और साधारण बुद्धिका आदमी भी इसका प्रयोग कर सकता है। जिस मनुष्यमें इतनी भी तर्क बुद्धि नहीं है उसे आज्ञानिक मिथ्यात्व के पञ्जे में से कौन छुड़ा सकता है ? ऐसे लोग —जो कि शास्त्रोंकी परीक्षा नहीं कर सकते—जब धर्मविरुद्ध, धर्मविरुद्ध चिल्लाते है तब उन का पाप कई गुणा हो जाता है। वे इस दम्भके द्वारा अपने आज्ञानिक मिथ्यात्वको और भी ज़्यादः चिरस्थायी बनाते है।

जैनधर्म दुनियाँ के सामने गर्जकर कहता है—पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु। युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

न मुझे महावीरमें पक्षपात है न कपिलादिकमें द्वेष ; जिसका वचन युक्तियुक्त हो उसी का ग्रहण करना चाहिए।

क्या शास्त्रोंकी दुहाई देने वाला कोई धम, ऐसी गर्जना कर है ? यदि नहीं तो क्या ऐसी गर्जना करने वाला धर्म अपने नाम पर प्रचलित हुए युक्तिविरुद्ध वचनोंको मनवाने की धृष्टता कर सकता है ? यदि नहीं, तो हमे शास्त्रोंको चोटी, तर्कके हाथमें देदेना चाहिये। शास्त्रोंको जजका स्थान नहीं किन्तु गवाहका स्थान देना चाहिए, और प्रत्येक बातका विचार करके निर्णय करना चाहिए। रविषेणाचार्य कहते हैं—जो जड़बुद्धि मनुष्य हैं वे नीच, धर्मशब्दके नाम पर अधर्म का ही सेवन करते हैं।

धर्मशब्द मात्रेण बहुशः प्राणिनोऽधमाः।
अधर्ममेव सेवंते विचारजड़ चेतसः॥

पद्मपुराण ६-२७८।

धर्म के विषयमें सदा सतर्क रहने की ज़रूरत है। तर्कशून्य हुए कि गिरे। क्योंकि धर्म के नाम पर और जैनधर्मके नाम पर भी इतने जाल और गड्ढ़े तैयार किये गये हैं कि तर्कके बिना उनसे बचना असम्भव है। जिन शास्त्रों का सहारा लिया जाता है वे तो खुद जाल और गड्ढ़ेका काम करते हैं। उन्हींसे तो बचना है। भगवान् महावीरके पीछे अनेक गण, गच्छ, संघ हो गये; समय समय पर जिसको जो कुछ जँचा या जिसने जिसमें अपना स्वार्थ देखा वैसा ही लिख मारा। अब

आप किस किसका बिश्वास करते फिरोगे ? विना तर्कका सहारा लिये आपकी गुजर नहीं है इसलिये पंडितप्रवर टोडरमल्ल जीने लिखा है--"कोऊ सत्यार्थ पदनिके समूहरूप जैनशास्त्रनिविषै असत्यार्थपद मिलावै परन्तु जिन शास्त्रके पदनिविषै तो कषाय मिटावने का वा लौकिककार्य घटावनेका प्रयोजन है। और उस पापीने असत्यार्थ पद मिलाए है तिनिविषै कषाय पोषनेका वा लौकिक कार्य साधनेका प्रयोजन है ऐसे प्रयोजन मिलता नाहीं। तातैं परीक्षाकरि ज्ञानी ठिगावते भी नाहीं। कोई मूर्ख होय सो ही जैनशास्त्र नामकरि ठिगावै है।" इससे पाठक समझ गये होंगे कि जैनशास्त्रके नामसे सतर्क रहने की कितनी ज़रूरत है टोडरमलजीने प्रयोजनके मिलानसे परीक्षा करने पर ज़ोर दिया है, जिस परीक्षाके नमूने इसी लेखमें दिये गये हैं। यदि पाठक इसी तरहकी परीक्षा करेंगे, शास्त्रसे बढ़कर तर्कको मानेंगे तो सच्चे जैनत्वको समझ सकेंगे। अन्तमें हम तीन वाक्य देते हैं जिसे जिज्ञासु महानुभाव सदा स्मरण में रक्खें:—

"जो तर्कयुक्त है वह सब शास्त्र है। परन्तु जो शास्त्र नाम से प्रचलित है वह सब, तर्क नहीं है।"

"जो सत्य है वह सब धर्म है। जो धर्मके नाम पर प्रचलित है वह सब, सत्य नहीं है।"

"धर्म, हमारे अर्थात् हमारे कल्याण के लिये है। हम या हमारा कल्याण धर्म के लिये नहीं है।"

[श्री घनश्यामदासजी बिड़ला विरचित 'बिखरे-विचार' से—

मार्च, १९३३]

शास्त्र भी और अक्ल भी

हिन्दू-समाज में कोई सुधार की बात चली कि शास्त्र मोर्चे पर आ डटे। यही दशा अस्पृश्यता-निवारण आंदोलन में भी हुई है। शास्त्रोंके पन्नों की इस समय काफी उलट-पुलट है यहां तक कि दोनों पक्षवाले शास्त्रों के अवतरण दे रहे हैं। गांधीजी ने भी पंडितोका आह्वान किया और उनसे शास्त्रोंकी व्यवस्था पूछी। पंडितो ने भी व्यवस्था सुनायी और श्री भगवान्‌दास जी जो शास्त्रोंके धुरन्धर विद्वान् हैं, इन व्यबस्थाओंको काशीके 'आज' पत्र के साथ 'क्रोड़-पत्र' के रूपमें प्रकाशित कर रहे है, जो सचमुच पढने और मनन करने योग्य है।

शास्त्रों की इस छान-वीनका यह प्रयत्न इस तरहसे मुबारक है क्योंकि कम-से-कम इससे पुराने आर्य-इतिहास का कुछ पता तो चल ही जाता है। किन्तु जो बातें सीधी-सादी बुद्धि द्वारा समझ में आ सकती हों, उसमे ख्वाहमख्वाह शास्त्र को आवश्यकता से अधिक महत्व देना खतरनाक भी है।

हमने कब शास्त्रोंसे परामर्श किया था कि रेल, मोटर, हवाई जहाज, तार और बेतारका उपयोग करें या नहीं है ? किसी जमानेमें मारवाड़ी भाई, धार्मिक बाधाके नामपर, विदेशी चीनीके कट्टर विरोधी थे। अब इन्हीं मारवाड़ी भाइयोंने, जैसे जावा और मॉरिशस में चीनी बनाई जाती है, उन्हीं तरीकोंसे चीनी बनाने के अनेक कारखाने खोले हैं। किन्तु कारखानों के पहले कभी उन्होंने शास्त्रों की व्यवस्था नहीं पूछी और पूछनेकी भी क्या जरूरत थी ? आखिर जो चीज हमें अपनी आखोंसे साफ़ दिखायी देती हो, उसके लिए चश्मा चढ़ाना बेकार ही तो होगा।

एक प्रकांड शास्त्रज्ञ से गांधीजीने अस्पृश्यता के सम्बन्धमें शास्त्रका मत पूछा, तो पंडितजीने यह कहा था कि हिन्दू शास्त्र ऐसी वस्तु है कि जिस चीजकी चाह हो उसकी पुष्टिमें और साथ ही उसके खंडन में भी प्रमाण मिल सकते हैं। यह बात उन पंडितजीने शास्त्रोंकी मर्यादा घटानेको नहीं कही थी। कही थी केवल वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन कराने के लिये। और उनकी इस उक्तिसे चौंक उठनेका भी कोई कारण नहीं है। हिन्दू धर्म में जैसा कि ईसाई मजहब में एक ही धार्मिक ग्रंथ 'बाइबल' है और मुसलमानों के यहाँ एक ही ग्रन्थ 'कुरान' है ऐसा कोई एक चक्रवर्ती ग्रन्थ नहीं है। यहाँ तो सदा से विचार-स्वातन्त्र्य रहा है। (फलस्वरूप एक ही नहीं, चार वेद बने, एक नहीं, छः दर्शन बने, अनेक पुराण बने, अनेक

उपनिषद् बने, यहाँ तक कि अल्लोनिषद् भी बन गया। ज्यों-ज्यों बुद्धिका विकाश बढ़ा शास्त्र साहित्य भी बढ़ता गया। शास्त्रके लिखने वालों ने देश-कालको सामने रखकर कुछ अच्छी-अच्छी बातें लिखीं, उन्हीं शास्त्रोंमें पीछेसे ऋषियों ने देश काल का परिवर्त्तन देखकर फिर कुछ और जोड़ दिया। इसी तरह कुछ लोगोंने अपने स्वार्थ की बेसिर-पैर की बेहूदा बातें भी जा कहीं। जैसी जिस समय आवश्यकता हुई उसी तरह से यह जोड़-तोड़ भी बढ़ता गया। आर्य लोगोंके रहन-सहन, आचार-विचार और शास्त्रोंका यही इतिहास है। इसलिये परस्पर विरोधी बातों का भी शास्त्रोंमें होना स्वाभाविक है। हिन्दू शास्त्रों की महत्ता ही यह है कि विचार-स्वातन्त्र्य को कभी आसन-च्युत नहीं होने दिया। यही हमारी खूबी और ताकत रही है। इसीके बल पर हम आजतक जिन्दा हैं। हम निभा ले जायें तो हमारी यह खूबी ही हमारी जिन्दगी का बीमा होगी।

आर्य शास्त्रोंमें काफी कुन्दन है। इतना है कि अन्य किसी मजहबी ग्रन्थमें नहीं; किन्तु आम के साथ गुठली भी है, रेशे भी हैं, इसलिये विवेक की आवश्यकता तो है ही। जो सर्वमान्य शास्त्र माने जाते हैं उनमें भी ऐसी बातों की कमी नहीं है, जो बुद्धि के प्रतिकूल और अप्रामाणिक और इसलिये अमान्य हैं। भागवतमें लिखे गये भूगोलको क्या हम मानेंगे? पारद और गंधक की उत्पत्ति की शिक्षा आचार्य राय से लेना

अधिक प्रामाणिक होगा अथवा रस-ग्रथोंके वर्णन से ? सुश्रुत में लिखे गए भल्लातक के प्रयोग द्वारा एक सहस्र वर्ष की आयु प्राप्त करने की बात पर विश्वास करके क्या किसीको सफलता मिल सकती है ? बात यह है कि जिस प्रकार हम नित्य समाचार-पत्र पढ़ते समय रायटर की खबरों और विज्ञापनों के बीच अपनी अक्ल से विवेक कर लेते हैं और विज्ञापन के वाक्यों पर, चाहे वे कितनी ही चित्ताकर्षक बातोंसे क्यों न भरे हों, जैसे हम ज्यों-का-त्यों विश्वास नहीं करते, उसी प्रकार हमें शास्त्रोंके सम्बन्ध में भी करना चाहिए। जो लोग हमें यह सिखाते हों कि हम बुद्धि को पृष्ठक्षेत्र में रखकर संस्कृत के ग्रन्थ की हर बात को वेद-वाक्य मानें, वे एक प्रकार से शास्त्रों के बड़प्पनको घटाने की शिक्षा देते हैं।

वेदको हम ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, किन्तु जिस चीज़को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं उस की सीमा भी अनन्त होनी चाहिए, क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान सीमाबद्ध हो ही नहीं सकता। ईश्वरीय ज्ञान तो सम्पूर्ण, सर्वोत्कृष्ट, प्राचीनतम और नूतनातिनूतन ही हो सकता है। किसी भी प्रकार का ज्ञान उसके बाहर नहीं छूट सकता। ऐसी हालत में यह भी मानना होगा कि वेद केवल चार संहिताओं तक ही परिमित नहीं हो सकते। बेतार के तार का साहित्य चाहे चार सहिता-रूपी वेदों में न पाया जाये ; किन्तु वह ईश्वरीय ज्ञान का अंश अवश्य है। इसलिये

वेदों का वह भी एक भाग है। इस तरह हमें अपने शास्त्र की कल्पना को भी विस्तृत बनाना होगा और अन्त में इस नतीजे पर पहुंचना होगा कि जितना भी ज्ञान-समूह है वह सभी शास्त्र है, और जो सच्चे ज्ञान से भिन्न है, वह चाहे संस्कृत भाषा में हो चाहे अरबी या अंग्रेजी मे, सारा अशास्त्र है।

हिन्दू समाज में वर्षोंसे अनेक विभाग बन गये हैं। अदृश्यता है, अस्पृश्यता है, अग्राह्यजलता है, असहभोजिता है और अवैवाहिकता है। इनमे अन्तिम दो विभागों से हम किसी को चोट नहीं पहुंचाते। हम किसी के यहाँ खाने को नहीं जाते, इसमे हम किसी का अपमान नहीं करते। न विवाह-शादी ही ऐसी चीज है कि किसी से सम्बन्ध करने से इनकार करने में हम किसी के साथ अन्याय करते हों। इसलिए असह-भोजिता और अवैवाहिकता कोई पाप नहीं ; किन्तु किसी मनुष्य के दर्शन-मात्र को पापमय मानना (अदृश्यता) जैसे कि मद्रास प्रान्त मे एकाध जगह प्रचलित है, या किसी के स्पर्श मात्र को पातक समझना (अस्पृश्यता) ये दोनों ही अभिमान-मूलक पापमय वृत्तियां है, जो हिन्दू धर्म की नाशक हैं।

शास्त्र कैसे कह सकता है कि हमारा यह अन्याय धर्म हो सकता है ? इस सम्बन्ध में हमारी अक्ल की गवाही क्या काफी नहीं है ? जो काम समाज की भलाई का हो, सदय हो,

बुद्धि जिसका पोषण करती हो, * गांधीजी जैसे आप्त पुरुष जिसका समर्थन करते हों, वह निश्चय ही धर्म है।

ऐसे धर्म के खिलाफ़ जो सच्छास्त्र सद्बुद्धि और सत्-पुरुषों द्वारा पोषित हो, यदि संस्कृत भाषा की कोई पोथी दूसरी बात कहे, तो ऐसी पोथी को शास्त्र कहना ऋषियों की महिमा को घटाना है। जिन ऋषियोंने शंख, मृगचर्म और बाघम्बर को एवं कस्तूरी और चामर को ठाकुरजी के पास पहुंचाने में हिच-किचाहट नहीं की, वे ऋषि चार करोड़ जीवित मनुष्यों को देवदर्शन से वंचित रखने की व्यवस्था लिख जायं, यह कदापि सम्भव नहीं। वे इस समय यदि जिन्दा होते तो वे भी वही बात कहते जो आज गांधीजी कह रहे हैं। प्रस्तुत कथन केवल इतना ही है कि हम शास्त्र भी पढ़ें और साथ ही कुछ अपनी अक्ल से भी काम लें। भगवान् कृष्ण के इस वचन की भी कुछ इज्जत करें—

Visva Bharati Ins
Accn. No.
LADNUN

"बुद्धौ शरणमन्विच्छ"
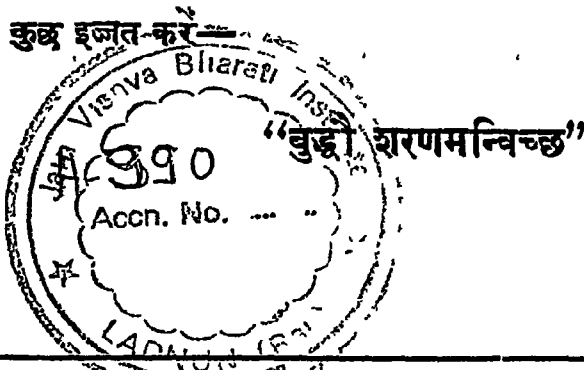
* सिद्धान्ततः (महात्मा) गांधीजी को सभी विषयों में 'आप्त' नहीं माना जा सकता—प्रकाशक।

वादियों की बातों और प्रयोगों पर भी पूरा प्रकाश डाल कर उनका निराकरण किया गया है। विभिन्न युक्ति-प्रमाणों और वैज्ञानिक विवेचनाओं के साथ आत्मा की अमरता का खण्डन और देहात्मवाद का मण्डन करते हुए जीव=शरीर की अद्वैतता सिद्ध की है। मूल्य १) रु०

(४) पुनर्जन्मवाद मीमांसा—इसमें आत्मा के अस्तित्व और उसके पूर्व एवं पुनर्जन्म सम्बन्धी सिद्धान्त (देहान्तर वाद) तथा कर्मफल सम्बन्धी शास्त्रीय व्यवस्था की बड़ी ही विद्वत्तापूर्ण मार्मिक आलोचना की गई है और प्रत्यक्ष प्रयोग-सिद्ध वैज्ञानिक आधार पर शरीर-अध्यात्म को स्थापित किया गया है। इसके लेखक संस्कृत और अंग्रेजी के प्रकाण्ड विद्वान, एक वयोवृद्ध सन्यासी हैं, जिनके शिर के बाल वैदिक वाङ्मय की छानबीन और दार्शनिक तत्त्व-चर्चा में ही पके हैं।
—मूल्य १) रु०

(५) ईश्वर और धर्म केवल ढोंग है ! — विषय नाम ही से प्रकट है। इसके प्रथम संस्करण ने धार्मिक जगत् में काफी हल चल मचा दी थी। द्वितीय संस्करण मूल्य १) रु०

(६) गुलामी की जड़ धर्म और ईश्वरवाद है ! — प्रत्येक व्यक्ति के पढ़ने और प्रचार करने योग्य ट्रेक्ट मूल्य)॥ सैंकड़ा २) रु० (प्रकाशित)

(७) राष्ट्र धर्म — अन्धविश्वास और सामाजिक रूढ़ियों की मूढ़ता को जड़ से नष्ट करने वाली श्री० सत्यदेव विद्यालंकार लिखित धार्मिक क्रान्तिकारी पुस्तक। द्वितीय संस्करण (प्रकाशित) मूल्य १) रु०

मिलने का पता:—

मंत्री, बुद्धिवादी संघ, ४६, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता।

बुद्धिवादी संघ

[कानून नं० २१ सन् १८६० ई० के अनुसार रजिस्टर्ड]

उद्देश्य

१—चराचर जगत् में 'सत्यं शिवं, सुन्दरम्' की खोज और उसका प्रतिष्ठान तथा तद्विपरीत व्यवस्थाओं का निराकरण।

२ -धार्मिक तथा सामाजिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का ठोस प्रमाणों के आधार पर अन्वेषण-विश्लेषण और स्पष्टीकरण करना।

३—गुप्त रहस्यपूण एव विवादग्रस्त विषयों की वैज्ञानिक और बुद्धि-संगत व्याख्या करना।

नियम

१—तत्त्वनिर्णय के लिये वैज्ञानिक प्रणाली को ही एकमात्र पथप्रदर्शक मामनेवाला प्रत्येक व्यक्ति, एक रुपया वार्षिक चन्दा देकर इसका 'साधारण सदस्य' और दो रुपया देकर 'विशेष सदस्य' हो सकता है।

२—केवल 'विशेष सदस्य' ही 'कार्यकारिणी समिति' के सदस्य हो सकते हैं।

३ —'कार्यकारिणी समिति' किसी भी विद्वान् एवं गण्य-मान्य व्यक्ति को संघ का 'माननीय सदस्य' चुन सकती है।

निवेदन

संघ के सदम्य बनिये, सहायतार्थ विशेष चन्दा भेजिये या प्रचारार्थ सघ-साहित्य खरीद कर बुद्धिवाद के प्रचार में हाथ बटाइये।

मंत्री, बुद्धिवादी संघ, ४६, स्ट्रान्ड रोड, कलकत्ता।